आत्मनिर्माण

बलिराज सिंह

श्रीहनुमतेनमः ॥

आत्म निर्माण

लेखक

योगिराज बलिराज सिंह

साहित्यकार प्रेस, भदैनी, वाराणसी

● आत्म निर्माण

● लेखक एवं प्रकाशक
योगिराज बलिराज सिंह
साहित्यकार प्रेस, भदैनी, वाराणसी

● प्रथम संस्कार १९८३

● मूल्य : १५) रु०

● मुद्रक : साहित्यकार प्रेस
भदैनी, वाराणसी

अनुक्रम
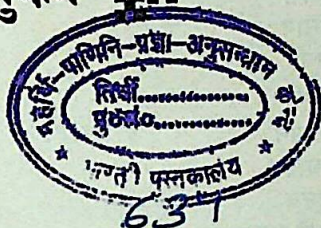
सम्पादकीय १
संक्षिप्त परिचय १०
अष्टांग योग १९
भक्ति योग २६
ज्ञान योग ३२
योग साधना की विद्या है ३६
आहार ४०
नासमझी ही दु:ख है ४९
स्वर साधना ५५
उपवास ५९
हृदय रोग से मुक्ति ६६
मधुमेह से मुक्ति ६९
योग की जड़ें ७३
अविवेक से मुक्ति ७७
ऋतुचर्या ८१
प्रातः भ्रमण ८४
मट्ठा ८६
कुछ महान भारतीय योगी ८९
गजेन्द्र मोक्ष स्तोत्र १०२
शिव स्तुति १०७
श्री हनुमान चालीसा १०९
माँ दुर्गा स्तोत्र ११२
षटचक्र ११७
योगासन १२१
नियम १२२
लक्षणों के आधार पर आसनों का निर्देश १२४
निर्देश १२८
आसन
पद्मासन १२९
अर्द्ध पद्मासन १३०
बद्ध पद्मासन १३१

कुक्कुटासन १३२
मत्स्यासन १३३
वज्रासन १३४
गर्भासन १३५
सर्पासन १३६
धनुरासन १३७
शलभासन १३८
खगासन १३८
आकर्ण धनुरासन १३९
योग मुद्रा १४०
विकसित कमलासन १४१
शशकासन १४२
गोमुखासन १४३
महावीरासन १४४
उत्तानपादासन १४५
अर्द्ध बद्ध पद्मासन पश्चिमोत्तानासन सहित १४६
जानु सिरासन १४६
एकपाद कन्धारासन सहित जानु सिरासन १४७
द्विपाद शयन कूर्मासन १४८
नाभि दर्शनासन १४९
मयूरासन १५०
मयूरी आसन १५१
एकपाद कन्धरासन १५२
उत्थित एकपाद कन्धरासन उड्डियान सहित १५३
अर्द्ध मत्स्येन्द्रासन १५४
अर्द्ध चन्द्रासन १५५
सर्वांगासन १५६
पश्चिमोत्तानासन १५७
कोनासन १५८
ध्रुवासन १५९
शवासन १६०
कुछ आस्था पत्र १६१

आत्म निवेदन

योग चिकित्सा के बाद आत्म निर्माण नाम से यह दूसरी पुस्तक अपने प्रिय पाठकों तक पहुँचाते हुये मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। मैं निरन्तर इस प्रयास में लगा हुआ हूँ कि योग साधना पर एक वृहद ग्रन्थ प्रस्तुत करूँ जिसमें योग के सम्पूर्ण पक्षों की व्यापक चर्चा हो। श्री हनुमान जी की कृपा एवं आपकी आत्मीयता से यह कार्य भी यथा शीघ्र ही सम्पन्न होगा ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन के पीछे मेरा यही प्रयास रहा है कि घोर सांसारिकता में निमग्न प्राणी इसके माध्यम से अपने निर्माण की ओर भी ध्यान दे जिसकी ओर से वह पूरी तरह उदासीन हो चुका है। इसलिए इस पुस्तक के आरम्भिक पृष्ठों में मैंने साधना, आहार विहार, ऋतु चर्या, स्वर साधना, अज्ञान आदि का विवेचन प्रस्तुत किया है। मानसिक शान्ति के लिए गजेन्द्रमोक्ष, शिवस्तोत्र, श्री हनुमान चालीसा एवं दुर्गा स्तोत्र को भी उद्धृत किया है ताकि पाठक को इसके लिए अन्यत्र न जाना पड़े।

योग के विविध पक्षों तथा उनके द्वारा रोग निवारण के संदर्भ में दैनिक आज, गाँडीव, न्यायाधीश, चक्रबन्धु, प्रेरिका तथा आरोग्य सुधा आदि पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित अपने कुछ निबंधों को भी इस पुस्तक में दिया गया है जिनसे हमारे विषय की पुष्टि होती है। किसी कारण वश चाह कर भी केवल २४ आसन दे सके हैं जब कि इनकी संख्या शताधिक हो सकती थी। चूंकि योग द्वारा रोग निवारण का संकल्प

लेकर मैं समाज सेवा में जुटा हुआ हूं, पाठकों के आत्म विश्वास हेतु इस पुस्तक के अन्त में कुछ चुने हुये आत्मीय जनों के आस्था पत्रों के महत्व पूर्ण अंशों को. प्रस्तुत किया है जिन्होंने हनुमत कृपा से मेरे निर्देशन में योगाभ्यास कर दीर्घ एवं कठिन रोगों से मुक्ति प्राप्त की है। ऋषियों महर्षियों एवं साधकों, उपासकों की अपने देश में एक लम्बी परम्परा रही है।

अतः हमारे यहाँ साधना सम्बन्धी ग्रन्थों की कमी नहीं है, किन्तु भाषा एवं पद्धति की दुरूहता के कारण वह सर्व सुलभ नहीं हो सकता। आत्म साधना एवं स्वानुभव के आधार पर अधिकांशतः इस पुस्तक में मैंने प्रायोगिक एव व्यावहारिक पक्ष को उभारा है ताकि सांसारिक जीवन में व्यस्त प्राणी स्वल्प प्रयास से लाभान्वित हो सके।

प्रसिद्ध उक्ति—हाथ कँगन को आरसी क्या के अनुसार इस पुस्तक के बारे में अपनी ओर से कुछ कहना उचित नहीं होगा। प्रख्यात विद्वान डा० भागीरथ प्रसाद त्रिपाठी "वागीश शास्त्री" जी ने भूमिका लिख कर जो इस पुस्तक को गौरव प्रदान किया है उसके प्रति मैं उनका अभारी हूँ।

मेरे बहुत ही घनिष्ठ मित्र श्री जगदीशचन्द्र मिश्र ने सम्पादन करके इस पुस्तक को जो स्वरूप प्रदान किया उन्हें तथा उन महानुभावों के प्रति आभार प्रकट करना उचित होगा जिन्हों इस कमरतोड़ महगाई में इस पुस्तक के प्रकाशन में मुझे आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। यदि इस कृति में आपको कुछ उपलब्ध हो सका तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूंगा।

● बलिराज सिंह
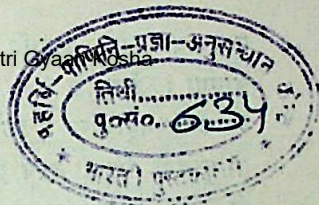
भूमिका

यह संसार दो तत्त्वों से निर्मित है—जड़ तथा चेतन, असत् एवं सत्, अज्ञान एवं ज्ञान अथवा स्थूल और सूक्ष्म। आद्य शंकराचार्य ब्रह्मसूत्र पर लिखे गये अपने शांकर भाष्य में प्रतिपादित करते हैं—'सत्यानृते मिथुनीकृत्य नैसर्गिकोऽयं लोकव्यवहार:'—सत्य और असत्य परस्पर मिलकर संसार के स्वाभाविक व्यवहार का निर्वाह करते हैं।

जो वस्तु उत्पन्न होकर अस्तित्व रखती है, उसमें परिवर्तन या परिणाम अवश्य होता है। परिवर्तन होने के कारण ही किसी व्यक्ति या पदार्थ में वृद्धि, विकास अथवा बढ़ाव होता है। किन्तु किसी पदार्थ में होने वाली यह वृद्धि एक निश्चित बिन्दु तक जाकर रुक जाती है और उसमें वहीं से क्षीणता प्रारम्भ होने लगती है। जब यह क्षीणता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है, तब उस वस्तु या व्यक्ति का अभाव हो जाता है। इसी अभाव को व्यावहारिक भाषा मे विनाश अथवा मृत्यु कहते हैं। परिवर्तन आदि उक्त विकारों को षड् भाव-विकार कहते हैं। ये जड, असत् अथवा स्थूल पदार्थों में होते हैं। यह संसार (ब्रह्माण्ड) तथा प्रत्येक प्राणी का शरीर (पिण्ड) जड, असत् अथवा स्थूल होने के कारण परिवर्तनशील (उत्पत्ति-विनाशशील) अथवा विकारयुक्त हैं।

जड़ वस्तु में स्फुरण अथवा स्पन्दन संभव नहीं है। एक ढेले को उठाकर आप आकाश में फेंक दीजिए। जब तक आपकी शक्ति उसमें रहेगी, तब तक वह ऊपर चला जाएगा। उसके अनन्तर शक्ति चुक जाने पर वह क्रमश: नीचे आएगा और गिरकर चूर-चूर हो जाएगा अथवा

पत्थर या लोहे इत्यादि धातुओं की दशा में पृथ्वी पर निश्चल पड़ जाएगा। ईसा से २०० वर्ष पूर्व प्रादुर्भूत भगवान् पतञ्जलि ने अपने व्याकरण महाभाष्य में लिखा है कि ढेला (पत्थर अथवा लोहा इत्यादि) तो पृथिवी का ही तत्त्व है। अन्त में पृथिवी (जड़ तत्त्व) उसे अपनी ही ओर आकृष्ट कर लेगी। जब तक वह मनुष्य की सीमित बाह्य चेतना से प्रेरित था, तब तक स्वभावतः ऊर्ध्वमुख प्रकाश की भाँति ऊर्ध्वमुख हो गया था। किन्तु बाह्य चेतना की सीमा समाप्त होने पर वह निःस्पन्द पड़ा रह गया।

यह सम्पूर्ण जगत् (ब्रह्माण्ड) तथा प्राणिजगत (पिण्ड) जो जड़ होने पर भी स्पन्दनशील और गतिशील दृष्टिगोचर हो रहा है, इसका कारण है असीमित चेतन तत्त्व की संनिधि का प्रभाव। उस परम चेतन तत्त्व ने इस ब्रह्माण्ड की रचना की और फिर उसके अन्दर समा गया। अतः उस परम चेतन तत्त्व से प्रेरित होकर ही इस जड़ तत्त्व में स्पन्दन होता है और स्पन्दन क्रिया होने के कारण ही उक्त छः क्रियाविकार होते हैं।

लोहे के कणों को चुम्बक के सामने ले जाइए। उनमें हलचल मच जाएगी। उन लौहकणों में हलचल थी नहीं, फिर आ कहाँ से गई? किन्तु ज्यों ही आप उन लौह कणों को चुम्बक की शक्तिसीमा से परे हटा लेते हैं, वे पुनः निःस्पन्द हो जाते हैं। आप पुनः उन्हें चुम्बक की शक्तिसीमा की परिधि में रख देते हैं, तो या तो वे नर्तन करने लगते हैं या फिर उसमें आत्मसात् होना चाहते हैं।

असीमित शक्ति अथवा चेतन तत्त्व के आगार उस परमतत्त्व की शक्ति से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आकृष्ट है, बँधा है और नर्तन कर रहा है, स्पन्दित हो रहा है। उसी प्रकार पिण्ड भी उस परम तत्त्व की प्रतिनिधि-शक्ति के कारण स्फुरित हो रहा है। उत्पत्ति, सत्ता, परिणाम, वृद्धि, क्षीणता तथा विनाश की अवधि ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनों की निश्चित

है। ब्रह्माण्ड (या अनेक संसारों के समुदाय) की यह अवधि पिण्ड की अपेक्षा अधिक लम्बी है। इसलिए ये पिण्ड अन्य पिण्डों के प्रतिदिन होने वाले विलयनों की भाँति ब्रह्माण्डों का विलयन नहीं देख पाते हैं। पर उनकी भी आयुसीमा निश्चित है। वहाँ वह बिन्दु है, जहाँ से क्षरण या क्षीणता प्रारम्भ होती है और अन्त में शक्ति चुकने के कारण इनको निःस्पन्द हो जाना है। यह जड़तत्त्व केवल उपकरण है चेतन तत्त्व का। वह चेतन तत्त्व ही सत् (अपरिवर्तनशील), चित् = चेतनाशील तथा आनन्दमय है। इसी को पाश्चात्त्य दर्शन के हिन्दी रूपान्तर में सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् कहते हैं। भारतीय दर्शन में अस्ति, भाति और प्रियम् अथवा सत्, चित् या आनन्द कहते हैं।

इस जड़ या स्थूल तत्त्व को प्रकृति तथा चेतन तत्त्व को पुरुष भी कहते हैं। प्रकृति में विकृति होती है। वह पुरुष को रिझाने के लिए स्पन्दनशील होती रहती है। पर अन्त में उसमें समाहित होने पर वह परा प्रकृति में अवस्थित हो जाती है।

इस परा प्रकृति को 'अव्यक्त' कहते हैं। सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण के रूप में व्यक्त होने पर यह अव्यक्त प्रकृति त्रिगुणात्मिका (व्यक्त) बन जाती है। वस्तुतः इसी त्रिगुणात्मिका का नाम प्रकृति है क्योंकि विकृति इसी में होती है, 'अव्यक्त' में नहीं। यह 'अव्यक्त' प्रकृति उस परम शक्तिशाली सूक्ष्म से भी सूक्ष्म परम चेतन के सहकार से स्पन्दित होती है और त्रिगुणात्मक होकर हमको अनुभूति में आने वाले सूक्ष्मतम तत्त्व आकाश को उत्पन्न करती है। आकाश में एक ही विकार रहता है—स्थूल शब्द। आकाश से जो तत्त्व उत्पन्न होता है वह उससे कुछ स्थूल होता है। इसलिए दो विकारों से युक्त हो जाता है। वह है—वायु। उसमें शब्द तथा स्पर्श दो गुण या विकार रहते हैं—शब्द अपने पिता का तथा स्पर्श अपना। उस वायु से उत्पन्न होने वाले अग्नि में वायु से भी स्थूल होने के कारण तीन विकार होते हैं—शब्द,

स्पर्श तथा रूप। दो विकार अपने पिता एवं पितामह के तथा एक विकार अपना स्वयं का—रूप। उसे आप सुन भी सकते हैं, छू भी सकते हैं और रूप होने के कारण देख भी सकते हैं। अग्नि का पुत्र है—जल। वह अपने पूर्ववर्ती तीनों पूर्वजों की अपेक्षा स्थूल है। आकाश का स्वरूप है ही नहीं। अवकाशाद् आकाशः। खाली जगह का नाम आकाश है। वायु का स्वरूप भी स्थूल अर्थात् पकड़ में आने वाला नहीं है। उसके पुत्र अग्नि का स्वरूप कुछ-कुछ पकड़ में आने वाला हुआ था। पर वह अपने किसी पुत्र या पौत्र पर प्रकट होता है, स्वयं प्रकट नहीं होता, ठहरता नहीं। जल तो जड़ होने के कारण ठहर गया। बर्फ होकर और भी ठोस बन जाता है। इसे आप सुन भी सकते हैं, छू भी सकते हैं, देख भी सकते हैं और जो इसके पूर्वजों में विकार नहीं था उस अपने रस विकार के कारण इसे आप चख भी सकते हैं। जल से उत्पन्न पृथिवी में अपने पूर्वजों के चार विकारों (शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस के अतिरिक्त अपना स्वयं का गन्ध विकार भी विद्यमान है।

आपने देखा! यह संसार अव्यक्त या शून्य से उत्पन्न हुआ है!! आप यह जानकर भी आश्चर्य करेंगे कि जब इन सबकी आकर्षण की अवधि चुक जाएगी, तब ये जिस क्रम से उत्पन्न हुए थे उसी क्रम से विलीन होते चले जाएँगे। पृथिवी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश त्रिगुणात्मिका प्रकृति में, प्रकृति अव्यक्त में और अव्यक्त उस सत्-चित्-आनन्द-घन सूक्ष्मातिसूक्ष्म परम चेतन में। सृष्टि की यह स्थिति विस्तर को खोलने और लपेटने की भाँति होती है।

उस परम चेतन का प्रतिनिधि चेतन आत्मा की संनिधि के कारण पिण्ड प्रकृति (शरीर) उस प्रकार स्पन्दित है, जिस प्रकार परमचेतन के कारण ब्रह्माण्ड स्पन्दित है। यह प्रतिनिधि चेतन आत्मा यद्यपि सत् चित्-

आनन्दमय है, यद्यपि प्रकृति के प्रतिनिधिभूत देह का आश्रय लेने के कारण, प्रकृति के विकृतिमय चौबीस तत्त्वों से घिरा रहने के कारण प्रकृति की विकृतियों को अपने में प्रतिबिम्बित पाकर अपने को स्वय विकारों से युक्त समझने लगता है। इस प्रकार जब उसका आनन्द-मय स्वरूप विच्छिन्न होने लगता है, तब उसकी व्याकुलता बढ़ने लगती है। वह अपने आनन्दमय स्वरूप में अवस्थित होने के लिए छटपटाने लगता है।

अपने इस आनन्दमय स्वरूप में स्थित रहने के लिए अर्थात् प्रकृति की विकृतियों को अपने में आरोपित करने से बचने के लिए अथवा प्रकृति में विकृतियों को न होने देने के लिए तत्त्ववेत्ता अनादि काल से उपाय करते चले आ रहे हैं।

इस विकृतिशील देह पिण्ड में स्थूल रूप से जल, अग्नि तथा वायु तत्त्व यदि समान अवस्था में रहते हैं, तो यह विकारी देह एक सौ वर्षों तक विकारों से रहित रह सकता है। इसलिए भारतीय मनीषियों ने घोषणा की—'शतायुर्वै पुरुषः।' आयुर्वेद ने तीनों तत्त्वों की गम्भीरता से छानबीन की और उन्हें उनके प्रतिनिधिस्वरूप कफ (जल), पित्त (अग्नि), तथा वात (वायु) के नाम से अभिहित किया। इन तीनों के असमान रहने पर सौ वर्षों के पहले ही प्रकृति में विकार उत्पन्न होने लगते हैं। जीवात्मा इनमें अपना प्रतिविम्ब देखने के कारण सत् और चित् रहते हुए भी अपने आनन्दमय स्वरूप के स्थान पर प्रकृति के दुःखमय स्वरूप का दर्शन करने लगता है। आयुर्वेद शास्त्र का चिन्तन उक्त तीनों विकारों को समानावस्था में ला देने के लिए हुआ ताकि जीवात्मा अपने आनन्दमय स्वरूप में सदा अवस्थित रह सके। किन्तु विकृतियों की पराकाष्ठा होने पर आयुर्वेद की सहायता से भी धर्म के साधन इस शरीर को विकृतियों से रहित बनाना कठिन है। घर में प्रतिदिन झाड़ू लगाने पर भी दूसरे दिन कूड़ा निकल आता है। सप्ताहों, मासों और

वर्षों से एकत्र हुए कूड़े में पृथिवी तत्त्व की विकृति की पराकाष्ठा हो जाती है—दुर्गन्धि। शरीर में आकाश, वायु, अग्नि और जल की अपेक्षा पृथिवी तत्त्व की ही प्रधानता है। पृथिवी का ही यह एक ढेला है। इससे झड़ने वाले विकारों को यदि प्रतिदिन झाड़ दिया जाए, उन्हें एकत्र ही न होने दिया जाए, तो सड़ी गंध होगी कहाँ से? विकृति पर शतवार्षिक अवधि तक नियन्त्रण रखा जा सकता है। इस मार्जनक्रिया का आविष्कार किया भारतीय मनीषियों ने योग के नाम से।

योग की दो शाखाएँ हैं—हठयोग तथा राजयोग। हठयोग का आश्रय लेकर व्यक्ति अपने को शारीरिक विकृतियों से मुक्त रख सकता है। किन्तु राजयोग की सहायता से शरीर तथा अन्तःकरण—इन दोनों के विकारों से परे रहकर अपने आनन्दमय स्वरूप में स्थित रह सकता है। राजयोग समन्वयात्मक योग है। इसे 'अष्टांग योग' के नाम से जाना जाता है। यद्यपि सम्प्रति ईसा से २०० वर्ष पूर्व विद्यमान भगवान् पतञ्जलि द्वारा रचित योगसूत्र उपलब्ध होता है, तथापि उनके पूर्व इसकी एक अतिदीर्घ परम्परा रही है। योग शास्त्र के आदि वेत्ता 'हिरण्यगर्भ' थे—

'हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः'।

हिरण्यगर्भ उस परम चेतनाधार का भी अभिधान है। उसके अतिरिक्त उत्तम नामक मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से अन्यतम ऋषि ऊर्ज के पिता का नाम हिरण्यगर्भ था। भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता (४,१-३) में प्रकृति की विकृतियों पर विजय प्राप्त करने के साधन योगशास्त्र को अनादि काल से प्रवृत्त बताया है। उन्होंने अर्जुन से कहा कि यह 'योगशास्त्र' बीच-बीच में महाकाल के थपेड़ों के कारण खण्डित-सा, लुप्त-सा होता जा रहा। मैंने ही हिरण्यगर्भ के रूप में सबसे पहले सृष्टि के प्रकाशक सूर्य को इसका उपदेश दिया था। सूर्य ने मनु को और मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को तथा इक्ष्वाकु ने राजर्षियों को इसका उपदेश दिया—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ॥
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।

योगीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने योग की पुरातनता का इतिहास बताकर १. यम (=अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, तथा अपरिग्रह), २. नियम (=शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान), ३. आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. ध्यान ८. तथा समाधि के तत्त्वों का संपूर्ण गीता में विस्तार के साथ प्रतिपादन किया है। यद्यपि वहाँ इनका क्रमिक वर्णन नहीं है, तथापि सभी तत्त्व संपूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता में बिखरे पड़े हैं। साथ ही साथ योगसाधना में सहायक आहार-विहार के तत्त्वों का भी वहाँ सम्यक् निरूपण किया गया है।

'एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः' (६,१०) द्वारा यम, 'शुचौ देशे' (६,११) के द्वारा नियम, 'स्थिरमासनमात्मनः' (६,११) तथा 'नात्युच्छ्रितं नातिनीचम्' (६,११) के द्वारा आसन, 'यतचित्तेन्द्रियक्रियः' (६,१२) के द्वारा प्राणायाम और प्रत्याहार, 'समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः। सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्' (६,१३) के द्वारा धारणा तथा 'प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः। मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः (६,१४) के द्वारा समाधि एवं युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः। शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति' (६,१५) के द्वारा समाधि की फलश्रुति की घोषणा कर दी।

प्रकृति रूपी घोड़े को साधने के लिए हठयोग अथवा राजयोग की साधनाएँ बताई गई हैं। पञ्चमहाभूतों के मध्यवर्ती वात, पित्त तथा

कफ को साम्यावस्था में बनाये रखने के लिए भूः, भुवः, स्वः इत्यादि सप्त लोकों का द्वादश आदित्यों के साथ गुणन करने पर स्थूलतः ८४ संख्या आती है। भेदोपभेद के द्वारा यह संख्या ८४ लाख तक पहुँचती है। यह उन-उन योनियों की उपलक्षक होने के साथ-साथ उनके क्लेशों से मुक्ति पाने के साधनभूत ८४ अथवा ८४ लाख योगासनों की भी सूचक है।

योगारुरुक्षु व्यक्ति प्रकृति (शरीर, इन्द्रियाँ, मन, चित्त, बुद्धि) रूपी घोड़े को विकृतियों (शारीरिक, ऐन्द्रियक, मानसिक, चरित्रिक तथा बौद्धिक रोगों) से दूर रखने के लिए योगासनों का आश्रय लेता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने (गीता ६।५) अर्जुन से स्पष्ट कह दिया कि मैं मानव-प्रकृति की विकृतियों से मुक्त होने के साधन बताये दे रहा हूँ। विकृतियों से अपने को मुक्त रखना प्रत्येक मानव का आवश्यक कर्तव्य है। जीवात्मा को स्वयं प्रकृति के क्लेशों में नहीं फँसना चाहिए—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

पूर्वजन्म की वासना और संस्कारों के कारण संचित कर्मों के रूप में मनुष्य इस जन्म में भले ही प्रारब्ध के अनुसार चल रहा हो। पर इस समय जो कर्म वह कर रहा है, वह भविष्य में संचित कर्म के रूप में परिवर्तित हो जाएगा और भाग्य बन बैठेगा। इस प्रकार भविष्य में भाग्य बन जाने वाला इस समय का कर्म तो उसके स्वयं के अधीन है। इस शुभ अवसर को खोकर आत्मोद्धार के लिए प्रयत्न न करना वस्तुतः आत्मघात करना है।

स्थूल अथवा जड़ प्रकृति को अनुकूल साधनायोग्य बनाने के लिए साधक का उपयुक्त आहार-विहार करना स्वयं सफलता की दिशा में उन्मुख होना है। उचित आहार-विहार के साथ योगसाधना करने पर वह

क्लेशों को दूर करेगी। यदि आहार-विहार के द्वारा प्रकृति को अनुकूल न बनाया गया, तो योगसाधना क्लेशों को हटा नहीं सकेगी (श्रीमद्भगवद्गीता ६।१७)—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

वह परम चेतन संपूर्ण द्वन्द्वों (राग-द्वेष, शत्रुता-मित्रता आदि) से परे है, उसमें परम शान्ति का सागर हिलोरें ले रहा है। जब आप योगसाधना द्वारा अनुकूल बनाये गये शरीर और इन्द्रियों को अन्तःकरण में समर्पित कर देते हैं, तब उस परम चेतन की शान्ति की कुछ झलक दिखाई देने लगती है। उसे गीता में नैष्ठिकी शान्ति बताया गया है। जब अन्तःकरण को आत्मा में समर्पित कर दिया जाता है, तब व्यक्ति को शाश्वतिक शान्ति का दर्शन होने लगता है और जब आत्मा को परमात्मा (परम चेतन) में समर्पित कर दिया जाता है, तब परा शान्ति का दर्शन होता है। योग की ये तीन भूमिकाएँ हैं। शान्ति का अर्थ हैं—क्लेशों से मुक्ति। अपनी इसी जीवितावस्था में जो व्यक्ति इन शान्तियों की प्राप्ति कर लेता है, उसे 'जीवन्मुक्त' कहा जाता है।

योगिराज श्रीबलिराज सिंह ने सतत योगाभ्यास के द्वारा अपनी प्रकृति को साध लिया है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि योगिराज ने योग की प्रथम भूमिका का दर्शन कर लिया है। परिणामस्वरूप उन्हें उस परमानन्द और परमशान्ति की झलक मिलने लगी है, जो इन्हें निरन्तर अपनी ओर आकृष्ट कर रही है।

योग-प्रशिक्षण की दिशा में आपका अनवरत अध्यवसाय परम स्तुत्य है। योगासनों के प्रशिक्षण के द्वारा इन्होंने शताधिक मानवों में योग के प्रति प्रबल आस्था उत्पन्न कर दी है। स्कन्द महापुराण में कहा गया है कि संसार के क्लेशों से संतप्त प्राणियों के लिए योग-साधन ही परमौषध है—

'[illegible] योगो हि परमौषधम्' ।

आप योगासनों द्वारा रोग-निवारण से संबद्ध एक ग्रन्थ की रचना पहले कर चुके हैं। यह आपका द्वितीय श्लाघ्य प्रयास है । 'आत्मनिर्माण' नामक इस ग्रंथ में सरल भाषा द्वारा अष्टांग योग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, आहार, नासमझी ही दुःख है, स्वर साधना, उपवास, इत्यादि विषयों पर कुशलतापूर्वक प्रकाश डाला गया है। उसके अनन्तर हृदय-रोग से मुक्ति, मधुमेह से मुक्ति, योग की जड़ें, अविवेक से मुक्ति, ऋतुचर्या, प्रातः भ्रमण, मट्ठा तथा कुछ महान् भारतीय योगियों के विषय में प्रतिपादन किया गया है, जो योगसाधकों के लिए परम उपादेय सिद्ध होगा । अन्त में गजेन्द्र मोक्ष, शिवस्तुति, हनुमान चालीसा तथा श्री शंकराचार्यकृत दुर्गास्तोत्र संलग्न करके साधकों की मानसशुद्धि के लिए पाथेय संभला दिया गया है । सैद्धान्तिक उपदेशों का पर्यवसान यदि कार्यान्वयन में नहीं हुआ, तो सफलता नहीं मिलती । 'यस्तु क्रियावान् स पण्डितः' क्रियावान् होना ही बुद्धिमत्ता का लक्षण है ।

इसलिए साधनोपदेश के अन्त में योगासनों के चित्र प्रकाशित कर ग्रन्थकार श्री बलिराज सिंह एवं सम्पादक श्री जगदीशचन्द्र मिश्र ने मानवता की श्लाघ्य सेवा का आदर्श प्रस्तुत किया है ।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि जिज्ञासु जन इस पुस्तक से पूरा लाभ उठाकर अपने जीवन को प्रकाश की नवीन दिशा में मोड़ेंगे तथा विद्वज्जन इस कृति का अवलोकन कर अवश्य ही उल्लसित होंगे और 'श्री योगिराज श्रीसिंह को आशीर्वचन से आप्यायित करेंगे ।

महालया २०४० वै०
(गुरु, २२-९-८३ ई०)
वाग्योगचेतनापीठम्
शिवाला, वाराणसी ।

भागीरथप्रसाद त्रिपाठी 'वागीश शास्त्री'
अनुसन्धान-संस्थान-निदेशक,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी ।

संपादकीय

भौतिक जगत् में मानव युगों से मृत्यु से संघर्ष करता आ रहा है और अन्त में थक हार कर इसे जन्म की ही भांति संसार की स्वाभाविक गति मान कर मुक्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। प्रकृति की गोद में पलने वाला सामान्य आरण्यक आदिवासी भी (जिसे आज का सभ्य समाज पिछड़ा हुआ मानता है) मृत्यु के बाद सदगति के लिए जीवन भर अच्छे कर्म करना चाहता है। भारत की यह प्राचीन काल से ही मान्यता रही है कि प्राणी को अपने कर्मों का फल भुगतना पड़ेगा। इसी मान्यता का सांस्कारिक प्रभाव है कि तमाम विकृतियों के बावजूद हम अपने एकान्तिक क्षणों में सत्कर्मों के प्रति आत्मतोष और बुरे कर्मों के प्रति चिन्तित हो उठते हैं। खान-पान से अधिक हमारे स्वास्थ्य पर अपने कर्मों का प्रभाव पड़ता है। इसीलिए सच्चे साधु संत, भिखारी, योगी आदि आर्थिक दृष्टि से विपन्न रह कर भी शरीर एवं मन से स्वस्थ पाये जाते हैं।

दीर्घ जीवन की प्राप्ति अर्थात जिजीविषा हमारी स्वाभाविक आकांक्षा है। यही कारण है कि तमाम कष्टों एवं अभावों के बावजूद प्राणी मरना नहीं चाहता। भयानक रोगी अथवा, जरा से जर्जर प्राणी

से भी यदि आप मरजाने की बात कहें तो वह बिगड़ उठता है। व्याधियों से मुक्ति भले न मिले किन्तु मृत्यु न हो।

एक पौराणिक कथा के अनुसार किसी व्यक्ति ने निरन्तर उपासना कर जब देवता को अपने सामने प्रकट हुआ पाया तो उसने उनके कहने पर यही बरदान मांगा कि उस की कभी मृत्यु न हो। देवता ने पहले बहुत समझाया किन्तु उपासक का हठ देख कर उसे अमरता का वरदान देना ही पड़ा। लेकिन जीने के मोह में उपासक को यह वरदान बहुत महंगा पड़ा क्यों कि सौ वर्ष के बाद उपासक का शरीर विकृत होने लगा और कुछ ही वर्षों में वह मांस का पिंड सा बन गया और सारे शरीर में कीड़े पड़ गये। कहते हैं ऐसी दुःखद स्थिति में उसने पुनः देवता को प्रकट किया और अपनी इच्छा से उसे मृत्यु मांगनी पड़ी।

जिजीविषा सम्बन्धी अनेक लोक कथायें मिलती हैं जो पुराणों आदि से चल कर जन जीवन में लोककथा का रूप ले चुकी हैं।

एक कथा के अनुसार पार्वती ने भगवान शंकर से जब आग्रह किया कि स्वर्ग खाली पड़ा है और धरती पर आदमी धक्के खा रहे हैं, क्यों न लोगों से स्वर्ग में रहने को कह दिया जाय। शंकर जी ने पहले तो पार्वती जी के आग्रह को टालना चाहा किन्तु बार-बार उनकी जिद देखकर ब्राह्मण के भेष में पार्वती को साथ लेकर एक वृद्ध प्राणी के पास गये। शंकर द्वारा स्वर्ग में चलने का प्रस्ताव सुनकर उस व्यक्ति ने बताया कि अभी उसके बच्चे छोटे-छोटे हैं, उन को पढ़ाना लिखाना है। शादी व्याह करना है। अतः जब ये सयाने होकर सारा कारोबार संभाल लेंगे, मैं तभी चल पाऊँगा।

कुछ दिन बीत जाने के बाद पार्वती जी ने भगवान शंकर को याद दिलाया कि उस व्यक्ति के पास चलना चाहिए क्यों कि अब उस के लड़के सयाने हो गये होंगे। शंकर जी को जाना पड़ा। इस बार उस व्यक्ति ने पुनः अपनी मजबूरी प्रकट की-महाराज, क्षमा करें, मेरी बहुओं

को बच्चे होने वाले हैं। बड़ी मेहनत से मैंने यह गृहस्थी बनाई है। अब

थोड़ा सुख भोगने का समय आया है। कुछ दिन बाद मैं अवश्य चलूंगा।

तीसरी बार जब शंकर गये तो वह कुत्ते के रूप में जन्म लेकर अपने द्वार पर बैठा हुआ था और घर के बच्चें उसे मार-पीट रहे थे। इस के बावजूद यह कहकर स्वर्ग जाने से इनकार कर दिया कि अपने परिवार का मान- अपमान सहकर, कुत्ते के रूप में ही सही सान्निध्य तो प्राप्त कर रहा हूँ।

कुछ दिन और बीता। पार्वती जी ने भगवान शंकर से कहा, प्रभु उस कुत्ते की आपने कोई खबर नहीं ली। बेचारा कितनी यातनाएँ सहता होगा। शंकर जी अब की बार जब उस के घर गये तो वह सर्प बनकर अपने गड़े हुए धन की रखवाली कर रहा था। शंकर को देखते ही उसने फुफकारा और काटने दौड़ा। अन्ततोगत्वा भगवान शंकर को उलटे पांव लौट आना पड़ा और इस प्रकार वह जीवन भर स्वर्ग नहीं जा सका।

यह बात किसी एक व्यक्ति की नहीं है बल्कि संसार का हर प्राणी इसी माया में लिप्त है। गोस्वामी तुलसीदास ने श्री राम चरितमानस में इसी संदर्य में कहा है—

भूमि परत भा डाबर पानी
जिमि जीवहिं माया लपटानी

सन्तों ने ठीक ही कहा है कि शरीर बार-बार मरता है किन्तु माया का आवरण हटाने में जीव सक्षम नहीं हो पाता। यही माया मोह संपूर्ण जगत पर एकाधिकार किये हुए है। मोह सामान्य वस्तु से आरंभ होता है और प्राण का मोह इसकी चरम परिणति है। जिस सन्तति के लिए प्राणी जीवन भर संघर्ष करता रहता है, देखा गया है कि अपनी प्राण रक्षा के लिए वह उसकी भी बलि देने से नहीं चूकता।

शास्त्रीय भाषा में इसे जिजीविषा कहते हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि

क्या यही जीना है जैसा कि आज का मानव जी रहा है। आज के आदमी को आदमी कहना भी शोभा नहीं देता क्यों कि वह विकृतियों का पुंज और व्याधियों का संग्रहालय बन गया है। वे अपढ़ और जंगली भले हैं जो अपनी नंगी चमड़ी पर पशुओं की भांति ऋतुएं झेल कर दिन रात श्रम करते मिलते हैं। भयानक हिंसक पशुओं से ताल ठोंक कर लड़ जाने, फावड़े चलाकर खेत बनाने और पेड़ों पर मचान बाँध कर रातें काट देना जिन के लिए सामान्य बात है।

ऐसा अदम्य साहस, अजेय शक्ति और स्वस्थ जीवन जीने वाले इनसानों से आज का तथाकवित विकसित समाज कोई प्ररण नहीं लेता बल्कि उसे नादान नासमझ मानकर उस की उपेक्षा करता है और मौका पाने पर उस पर अत्याचार करने से भी नहीं चूकता। जंगलों पहाड़ों पर लगने वाले उद्योगों एवं बैठाई जाने वाली फैक्टरियों में उन्हें कम से कम पारिश्रमिक देकर काम लेने वाले उन पर और भी जल्म ढाते हैं।

मानवीय शोषण की यह प्रवृत्ति वड़े-वड़े नगरों में क्या कम है? कम से कम वेतन-मजदूरी देकर अधिक से अधिक काम लेने की होड़ लगी हुई है। फैक्टरियों-उद्योगों का संचालक अपना बैंक बैलेंस देखता है किन्तु अपने उस पहरेदार की ओर से आंखें फेर लेता है जो आधा पेट भोजन कर के जाड़े की रातों में कांपता हुआ उनकी करोड़ों की सम्पत्ति की रक्षा करता है।

उच्च शिक्षा प्राप्त करने वालों की भी यही प्रवृत्ति होती है। वे कम से कम श्रम करके अधिक से अधिक धन कमाना चाहते हैं। उपयुक्त आहार जो स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है वह गरीब और अमीर दोनों के लिए सुलभ नहीं है। गरीव जो धनघोर रूप से शारीरिक श्रम करता है, उसे पौष्टिक आहार चाहिए किन्तु वह भूखा रहकर हड्डीपर जूझ रहा है और आरामतलब, निकम्मे लोग जिन्हें हल्का फुल्का

भोजन चाहिए वे गरिष्ट और भारी आहार लेकर मस्ती की जिन्दगी काटना चाहते हैं। किन्तु यह मस्ती अधिक दिनों तक नहीं चल पाती। कुछ ही दिनों बाद ये आराम तलब लोग पानी भी पचाने में समर्थ नहीं रह जाते। अन्ततोगत्वा भोजन के बदले दवायें ही इनका आहार हो जाती हैं। उन की सारी संपत्ति का सुख नौकर चाकर प्राप्त करते हैं। और उन्हें उवला पानी आदि पीकर सामान की तरह एक कमरे में पड़ा रहना पड़ता है। उधर गरीब भी आहार न पाने के कारण वचपन से सीधे बूढ़ा हो जाता है और विना जवानी देखे ही काल के गाल में समा जाता है।

वेदों और शास्त्रों की मूल्यवान उक्तियों से आज दोनों वर्ग अपरिचित हैं। रोटी और धन बटोरने की आपा-धापी में दोनों का जीवन स्वप्न की तरह समाप्त हो जाता है। और जब आंखें खुलती हैं तो हाथ मलना ही शेष रह जाता है। अनुभवी सन्त की वह वानी चरितार्थ होती है—

अब पछताये होता का
चिड़िया चुंग गई खेत

वेदों मे ऐसी अनेक ऋचाएँ मिलती हैं जिन में मानव के शतायु होने के साथ ही सौ वर्ष तक देखने सुनने, चलने फिरने अर्थात् पूर्ण स्वस्थ रहने की कामना की गई है। क्यों कि हमारे ऋषि इस तथ्य को जानते थे कि मात्र जीवित रहना ही उपलब्धि नहीं है, बल्कि स्वस्थ रहना भी आवश्यक है।

विविध पशु-पक्षियों की भांति यदि मानव भी पूर्ण रूपेण प्रकृति के सहारे रहे, संतुलित आहार विहार करे तो उस के लिए भी किसी औषधालय, न्यायालय, जेल अथवा अनावश्यक संग्रहालय की आवश्यकता न पड़े। किन्तु बुद्धिवादी होने के नाते आदमी आदिकाल से प्रकृति से संघर्ष करता आ रहा है। वह संसार में अपनी उपस्थिति को

चिरस्थायी बनाने के लिए जुटा हुआ है, यद्यपि स्वयं उसका जीवन अस्थायी है। हर क्षेत्र में वह कुछ कर गुजरने की भावना से जीवन पर्यन्त स्पर्धा और प्रति स्पर्द्धा करता है।

गंभीरतापूर्वक देखा जाय तो संसार की निःसारिता को एक स्तर तक नकारना ही मानव की अपनी उपस्थिति का उद्घोष है। मानव की इसी निरन्तर संघर्षशीलता का परिणाम आज का विकसित संसार है। आज भौतिक क्षेत्र में मानव धरती के आर पार ग्रहों नक्षत्रों को समेटने में लगा हुआ है, किन्तु इस के घातों-प्रतिघातों से स्वयं मानवता ही घायल है और प्रकृति पर इसके कुप्रभाव व्याप्त होते जा रहे हैं। आज हवा पानी तक दूषित हो गया है जा हमारे जीवन के लिए अनिवार्य है। दूषित हवा और पानी से जब हमारे खाद्यान्त प्रभावित हैं तो जीवों पर उसका प्रभाव कैसे नहीं पड़ेगा।

आये दिन अखबारों में ऐसे समाचार पढ़ने को मिलते हैं कि भारत में ३० प्रतिशत बच्चे बहरे होते हैं। अमेरिका में विकलांजों की संख्या बढ़ रही है, विशाल नगरों मे वायु दूषण से रोगियों की संख्या बढ़रही है, भारत की पवित्र नदी गंगा का पानी दूषित हो रहा है; उर्वरकोंके प्रभाव से उत्पादित अन्न खाकर लोग अन्यान्य रोगों के शिकार हो जाते हैं आदि-आदि।

ऐसी भयावह स्थिति से उबरने के लिए तमाम शोध हो रहे हैं, चेता-वनियां दी जाती हैं किन्तु सारी धरती का जब यही हाल है तो कोई भाग-कर कहाँ जायेगा। विकसित देश एक ही विष्फोट से संसार का सफ़या कर सकते हैं किन्तु समस्या उनके बचने की है। हो सकता है कि मानव जीवन पर मेघ की तरह घिरे इन खतरों से उबरने के लिए सारा संसार एक होकर कभी कुछ समाधान खोज निकाले क्यों कि जीवित रहने के लिए एक दिन लोगों को कुछ न कुछ सोचना अवश्य पडेगा, किन्तु तब शायद बहुत देर हो चुकी होगी।

ऐसी भयावह स्थिति में आत्मनिर्माण की नितान्त आवश्यकता है। दूसरों को उपदेश देने से पहले हमें अपने को संभालना और सुधारना होगा। इसी पवित्र भावना से योगिराज श्री बलिराज सिंह की प्रस्तुत कृति का हम प्रकाशन कर रहे हैं। साधना के क्षेत्र में दक्ष श्री बलिराज हमारे बचपन के मित्र एवं सहपाठी रहे हैं और आज भी दैव संयोग से हम प्रतिदिन काफी समय तक साथ-साथ रहते हैं। बचपन से ही योग साधन की ओर आप का झुकाव तथा बाल समाज में भी गंभीर देख कर बहुधा इन के साथियों की संख्या बहुत कम रही। कितने तो इनकी हंसी उड़ाया करते थे। लेकिन इन्होंने किसी प्रिय-अप्रिय घटना पर कभी भी विशेष ध्यान नहीं दिया। आज जब योग साधना में इन का यह निखरा हुआ रूप देखता हूँ तो वे सारी घटनाएँ स्मरण हो आती हैं। होनहार बिरवान के होत चीकने पात, वाली उक्ति ठीक ही कही गई है। पिछड़े साथियों को सहयोग देना, दु:खी को समझाना और कटुता के अवसर पर चुप रह जाना इनका स्वभाव था।

'आत्म निर्माण' की स्पष्ट अभिव्यक्ति है व्यक्ति का अपना कल्याण। पुस्तक का यह नाम चुनते समय हम ने पर्याप्त विचार विमर्श किया है। वास्तव में इधर कुछ दशकों से संघे शक्तिः, समाज कल्याण, मानवता की रक्षा, बहुजन हिताय, समष्टि की सुरक्षा, जन कल्याण; वसुधैव कुटुम्बकम्, दल, संस्था, संघ, गोष्ठी, विश्व हित आदि शब्दों के व्यापक प्रयोग से व्यक्ति का अपना स्वत्व समाप्त सा हो गया है। छोटे से छोटे काम के लिए लोग भीड़ जुटाने के आदी हो गये हैं। जनतंत्रीय व्यवस्था का सही अर्थ न लगाने के कारण व्यक्तिगत संभावनाओं पर तुषारापात सा हो गया है। परिणाम स्वरूप व्यक्तिगय रूप से हर प्राणी अक्षम और निरुपाय हो गया है। लोग दूसरों को उपदेश देने में लगे हुए हैं। युग द्रष्टा कवि गोस्वामी तुलसीदास ने चार सौ वर्ष पहले ही इस स्थिति का आकलन कर के लिख दिया है—

पर उपदेश कुसल बहुतेरे
जे आचरहिं ते नर न घनेरे

दूसरों को उपदेश देते-देते हम अपने आचरण को भूल गये हैं। भीड़ में अन्य यात्रियों को धक्के देकर अपने यजमान को मुक्ति का मार्ग दिखाने वाला पंड़ा यह भूल गया है कि वह जो कर्म कर रहा है उसका परिणाम उसे भोगना पड़ेगा। अपने शिष्यों को चरित्र निर्माण की दीक्षा देने वाले गुरु, शिक्षक और उपदेशक स्वयं उनका पालन नहीं करते।

आचरण का यह अभाव संपूर्ण मानव जाति में बुरी तरह व्याप्त हो गया है। परिणाम स्वरूप हमारे संपूर्ण जीवन का एक एक चरण दूषित हो गया है। माता, पिता, बहन, पुत्र, भाई, मित्र, कुटुंबी, पड़ोसी आदि के सम्बन्ध औपचारिक वातावरण में चल रहे हैं जिनका टूट जाना कहीं अधिक सन्तोषप्रद है।

ऐसे ही टूटे घरौंदों में जीने वाले लोग जब सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यक, व्यापारिक आदि खेमों में जुट कर कुछ करने का संकल्प लेते हैं, उनका संबंध एक मामूली झोंके में विखर जाता है। अपने पारिवारिक संबन्धों में विफल रहने वालों से यह आशा करना भारी भूल है कि वे समाज हित के लिए एकजुट होकर रहेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक की उपयोगिता इस क्षेत्र में प्रतीक मात्र है, इसकी मूल उपादेयता है स्वस्थ, संयमी एवं चरित्रवान व्यक्ति का निर्माण, जिसके अभाव में व्यक्ति से लेकर विश्व तक के समस्त सबन्ध एवं क्रिया कलाप अधूरे रह जाते हैं।

लेखक श्री बलिराज सिंह के इस दिशा में किये गये श्रम को मैंने यथा अनुरूप क्रम से रखने, उसकी भाषा ठीक करने एवं यत्र-तत्र व्याख्या प्रस्तुत कर उनकी मूल भावना को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। योगिराज ने अपना सारा समय एकनिष्ठ होकर साधना में लगाया है,

अतः कोई जरूरी नहीं कि वे उसे अभिव्यक्ति भी दे सकें। मित्र होने के नाते मैं उनकी भावनाओं से विशेष रूप से परिचित हूँ अतः मैं ने इस दुरूह कार्य को संपादित करने का साहस किया है।

इस पुस्तक में योगिराज के कुछ चुने हुए लेख भी प्रकाशित किये जा रहे हैं जो विविध रोगों की चिकित्सा से संबधित हैं और जिन्हें वाराणसी से प्रकाशित आज, गाण्डीव, जयदेश, चक्रवन्धु आरोग्य सुधा आदि पत्र पत्रिकाओं ने समय समय पर प्रकाशित किया है। विविध रोगों के निवारणार्थ कुछ चुने हुए आसम और उनकी विधियाँ, आत्म निर्माण हेतु आहार विहार एवं दिनचर्या, संयमित जीवन की आवश्यकता आदि को प्रस्तुत करने के साथ ही पुस्तक के अन्त में कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों के प्रशस्ति पत्र भी छापे गये हैं जिन्हों ने योगिराज के निर्देशन में अपने रोगों से मुक्ति पाई है।

योगिराज की इच्छा के अनुरूप सब के अन्त में कुछ नियमित पाठ भी प्रकाशित किये गये हैं जिन का प्रयोग कर प्राणी तमाम आधियों व्याधियों से मुक्त हो सकता है।

अन्त में मैं अपने उन मित्रों विद्वानों को साधुवाद दूंगा जिन्हों ने इन पुनीत कार्य में मुझे सययोग प्रदान किया है। इस पुस्तक में जो कुछ भी अच्छाई है वह योगिराज की देन है किन्तु जो कुछ त्रुटियां हैं, उनका भागी अकेला मैं हूँ। फिर भी यदि इस को पढ़ कर एक व्यक्ति भी लाभान्वित हो सका तो हम अपना श्रम सार्थक मानते हैं।

जगदीशचन्द्र मिश्र

संक्षिप्त परिचय

मीरजापुर जनपद के खुलुआ नामक ग्राम के एक सामान्य कृषक परिवार में २४ जुलाई १९३४ को श्री बलिराज सिंह का जन्म हुआ। आपके पिता श्री शीतला प्रसाद सिंह बड़े ही सीधे एवं निर्मल स्वभाव के व्यक्ति हैं, जिनकी पूरी छाप बलिराज जी पर पड़ी। श्री बलिराज ने अपने जीवन का बहुमूल्य समय गंगा की कछार में अवस्थित अपने इसी मनोरम गाँव में गुजारा जो प्रकृति का स्वर्ग कहा जा सकता है।

अधिक उम्र बताकर अथवा अनेक आश्चर्यजनक घटनाओं से जोड़कर बहुधा हम विशिष्ट व्यक्तियों में अमानवीय चमत्कार आरोपित कर देते हैं जिससे जन सामान्य चाह कर भी उस क्षेत्र में प्रगति नहीं कर पाता।

बलिराज जी बचपन से लेकर आज तक अति निर्मल स्वभाव से अपनी दिनचर्या में लगे हुए हैं। परिवर्तन बस इतना ही है कि विगत पाँच वर्षों से आप अपनी योग साधना से समाज को लाभान्वित कराने में दिन रात सोचते और क्रियाशील रहते हैं।

उतार चढ़ाव हर व्यक्ति के जीवन में आता है और समाज का हित चाहने वाला ऐसी परिस्थितियों से विशेष रूप से गुजरता है, सो बलिराज जी भला कैसे बच सकते थे।

मीरजापुर और गाँव से इण्टरमीडिएट तक की शिक्षा पूरी कर आप जीविकोपार्जन के लिए वाराणसी आये। यहाँ पंडित चन्द्रशेखर मिश्र (प्रसिद्ध कवि) के सहयोग से टुल्लू वाटर पम्प में आप को नौकरी मिल गयी जहाँ आप लगातार १६ वर्षों तक सेवा करते रहे।

संक्ठा ब्रह्मपुरी काशी में गंगा तटीय क्षेत्र सिद्धेश्वरी गली में आपने एक किराये की कोठरी ली और २ बजे भोर में उठकर नियमित साधना करने के बाद अपनी ड्यूटी पर पूरी तरह डटे रहे। योग साधना के बल पर आप हमेशा स्फूर्त एवं जागरूक रहे और अगल बगल के टेबुलों का कार्य भी पूरा करते नहीं थकते थे।

इसके बावजूद मालिक वर्ग को सन्तुष्ट न पा कर इन्हें त्यागपत्र देना पड़ा। इन्ही दिनों इनकी कला पर भी सन्देह किया जाने लगा जिसे सहन कर पाना किसी भी कलाकार के लिए कठिन होता है। नौकरी छोड़ने के पूर्व इन्होंने दस दिनों में अपने बत्तीसों दाँत उखड़वा दिये और एक बूंद भी न तो खून आया और न ही कोई पीड़ा हुई। किन्तु उन्होंने तब भी योगिराज को नहीं पहचाना।

इन दिनों मैं भी सन्मार्ग रायपुर छोड़कर भदैनी (वाराणसी) आकर साहित्यकार प्रेस और साहित्यकार सहयोगी प्रकाशन का कार्य शुरू कर चुका था। एक दिन उन्मुक्त भाव से दोपहर के समय बलिराज जी ने प्रेस में आकर बताया कि वे सेवामुक्त होकर आ गये हैं और अब कहीं कोई नौकरी नहीं करना चाहते। वैसे इन्हें काम छोड़ने पर अनेक उद्योग संचालकों के आमंत्रण प्राप्त हो रहे थे। फुल टाइम और पार्ट टाइम के अनेक काम आप को मिल रहे थे जहाँ अच्छा वेतन और सुविधाएँ थीं। किन्तु योगी का चित्त पूरी तरह विरक्त हो चुका था।

अपने मन में आप ने स्वतंत्र रूप में रहने का निर्णय ले लिया था, फिर भी सारी समस्या मेरे सामने रखकर मेरी राय जानना चाहते थे। पर्याप्त विचार विमर्श के बाद मैंने भी वही कहा जो इनके मन में था। हंसते

हुए इन्होंने कहा, मैं जानता था, आप भी यही कहेंगे किन्तु ......।,

उनका यह किन्तु समझने में मुझे देर न लगी मैंने कहा, 'आप के लक्ष्य की सिद्धि में यह कोई अवरोध नहीं है किन्तु यदि आप मानते हैं तो वह भार हनुमान जी की कृपा से हम लोग वहन कर सकते हैं। आप को आज से किसी प्रकार की कोई चिन्ता नहीं करनी है। लगे हाथ मैं ने एक सवाल भी किया कि अब आप की क्या योजना है ?

बलिराज जी ने गम्भीर हो कर कहा, मैंने बचपन से हीं योगाभ्यास किया है। जिस के बारे में आप विशेष जानकारी रखते हैं, मेरी इच्छा है कि समाज में योग का प्रचार किया जाय। इसी दौरान आपने बताया कि बहुत दिनों से मैं योगासनों द्वार छोटे-मोटे लोगों का उपचार करता आ रहा हूँ और इस में मुझे आश्चर्यजनक लाभ दिखाई दिया है। गठिया, जोड़ों में दर्द, बवासीर, स्वांस रोग, चक्कर आदि से ग्रसित अनेक प्राणियों को कुछ ही दिनों में मैंने ठीक किया है।

बलिराज जी की इस उपलब्धि से मैं पूरी तरह अपरिचित था, अतः यह सुनकर मेरा विश्वास दृढ़ हो गया कि भगवान् इन से कुछ अच्छे काम कराना चाहता है, शायद इसीलिए इन्हें नौकरी छोड़नी पड़ी है। श्यामाचरण लाहिड़ी तथा अनेक योगियों के जीवन की घटनाएँ मुझे स्मरण हो आयीं जिनके कारण ही वे मुक्त होकर समाज का हित कर सके। इनके विश्वास को दृढ़ करने के लिए मैं पुस्तकों में पढ़ी तथा महान लोगों से सुनी अनेक घटनाओं की चर्चा करता रहा। दो एक पुस्तकें भी इन्हें पढ़ने को दी और यह क्रम महीनों चलता रहा।

इस बीच इन्होंने अपनी आवश्यकताएँ अत्यन्त सीमित कर ली थीं। मसलन वस्त्र के नाम पर खादी के दो कुर्ते-पाजामे जिसे वे रात में रोज अपने हाथों साफ कर लेते थे और भोजन के नाम पर आधा किलो नेनुआ या अन्य हरी सब्जी तथा पाव भर आटा। स्वल्पाहार का यह अभ्यास उनका पुराना था और जीवन भर चलता रहेगा। दोनों नौरात्र

में नवों दिन आप निराहार रहते है और जल भी नहीं लेते। वर्ष में एक

बार चालीस दिनों तक केवल जल लेकर व्रत रहते हैं। इस प्रकार आपने अपने शरीर और मन को इतना साध लिया है कि किसी भी स्थिति में प्रसन्न एवं चुस्त-दूरुस्त रहना आप का स्वभाव बन गया है।

इसके बावजूद मुझे इनके सांसारिक उपयोग की चिन्ता थी जिस का समाधान आवश्यक था। इस बीच मैंने अपने कुछ परिचित शिक्षकों से आग्रह किया कि वे अपने विद्यालयों में इनके कार्यक्रम करायें ताकि बच्चों पर योग साधना का संस्कार पड़े। बीसो विद्यालयों में मेरे आग्रह पर इन्होंने अपने योगाभ्यास का प्रदर्शन कर अध्यापकों छात्रों को चकित कर दिया किन्तु इससे आर्थिक उपलब्धि नहीं के बराबर हुई। मुझे स्वयं अच्छा नहीं लगा क्योंकि तमाशा देखने के लिए भीड़ जुट जाती थी किन्तु मिलता कुछ न था। इसे मैंने साधक और साधना दोनों का अपमान समझ कर इन्हें ऐसा करने से रोक दिया। अनेक विद्यालयों के आमंत्रण आए किन्तु मैंने बलिराज जी को नहीं जाने दिया। मेरे कुछ मित्र प्रधानाध्यापकों ने आग्रह किया कि योगिराज को प्रति सप्ताह बच्चों को प्रशिक्षण देने के लिए उनके विद्यालयों मे भेजा जाय। यह प्रस्ताव उचित समझ कर मैंने बलिराज जी से आग्रह किया और उन्होंने उसी समय से जाना शुरू कर दिया। इनमें एक विद्यालय के लिए इन्हें गंगा पार कर बाढ़ के दिनों में भी रामनगर जाना पड़ता था, जहां पूरा दिन लग जाता था। फिर भी बलिराज जी ने अपने कर्तव्य का बखूबी निर्वाह किया। लेकिन कई महीने सेवा करने के बाद भी हमारे आत्मीय प्रधानाचार्यों ने बलिराज जी को कुछ भी पारिश्रमिक नहीं दिया और न तो इन्होंने कभी उनसे या मुझसे कोई चर्चा ही की।

एक दिन मैंने स्वयं पूछा तो आप मुस्कुरा कर रह गये। आपने मुस्कुराते हुए कहा कि मैं आपके आदेश का पालन कर रहा था। इतना निकट रह कर भी मैंने योगिराज के इस पवित्र, निश्छल रूप को पहली

बार पहचान सका, फिर तो मुझे अपने ऊपर ही ग्लानि होने लगी कि

मेरे कारण इन्हें कितना कष्ट उठाना पड़ा। दूसरे दिन से यह कार्य भी रोकना पड़ा। मजे की बात देखिए कि एक सप्ताह बीतते ही वे शिक्षक हमारे यहाँ शिकायत लेकर आये कि - योगिराज अपनी ड्यूटी पर नहीं पहुंच रहे हैं।

बड़ी विनम्रता से मैंने उन्हें समझाया कि उनके पास अभी समय नहीं है, भविष्य में भी शायद वे व्यस्त हो जायेंगे, अतः अब आप क्षमा करें। इसके बावजूद किसी ने पारिश्रमिक की कोई बात नहीं की। समाज का यह विकृत रूप शायद मैं न देख पाता, यदि ऐसा अवसर न मिला होता।

बलिराज जी को अब मैं योगिराज मान चुका था। समाज के घातों प्रतिघातों में मुस्कुराते हुए आप को भीतर ही भीतर जूझते देखकर मुझे आत्मतोष होता था। इस बीच उन्होंने वाराणसी नगर के कुछ संभ्रान्त व्यक्तियों को आसन सिखाकर उनके असाध्य रोगों को दूर करने की आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त कर ली थी। इनके चालीस आसनों के फोटोग्राफ हो चुके थे। हम दोनों ने राय की कि क्यों न 'योग चिकित्सा' नाम की एक पुस्तक छापी जाय जिससे समाज का हित हो और इन का कार्य भी आगे बढ़े।

फिर क्या था, योगिराज ने सप्ताह भर में कठिन श्रम कर के मैटर तैयार किया और वह पुस्तक प्रकाशित हो गयी। इस पुस्तक से कई लाभ हुए। आर्थिक लाभ को तो हम गौण मानते हैं किन्तु उसे खरीदने और अभ्यास करने वालों की संख्या रोज बढ़ती गयी। इस पुस्तक में अंग्रेजी और हिन्दी में कुल ४० आसनों की विधियाँ और उन से होने वाले लाभों की सूक्ष्म चर्चा प्रस्तुत की गयी है। योगासनों के प्रति आकर्षण होने के साथ ही योगिराज के संपर्क में आशातीत सफलता पाने के कारण इनकी यह पुस्तक देखते देखते बिकने लगी और कई

दैनिक पत्रों ने अपनी समीक्षाओं में इस की सराहना की ।

इस पुस्तक को छपे आज दो वर्ष बीत रहे हैं। इस अवधि में योगिराज ने काशी के सैकड़ों असाध्य रोगियों को योग चिकित्सा से स्वस्थ किया इनमें हृदय रोग, वायु विकार, साइटिका, गठिया, स्नायुदौर्बल्य, उदर विकार, मस्तिष्क रोग आदि से पीड़ितों की एक लम्बी कतार है । इनमें से कुछ प्रमुख लोगों के आस्था पत्र भी प्राप्त हुए हैं जिसे इस पुस्तक में प्रकाशित किया गया है ।

योगिराज की विलक्षण प्रतिभा का सही मूल्यांकन अष्टांग आयुर्वेद महा विद्यालय के संचालक एवं मेरे प्रिय मित्र भाई रामश्रृंगार पाण्डेय ने किया जिन्होंने योगिराज को पाकर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की और योग नेचुरो मेडिकल ट्रेनिंग एण्ड रिसर्च सेन्टर की स्थापना कर सारा भार योगिराज पर सौंप दिया । पाण्डेय जी योगिराज के निर्देशन में योग प्रशिक्षण शिविर चलाकर अनेक प्रतिभाशाली युवकों को प्रशिक्षित कर योग विद्या का व्यापक प्रचार कर रहे हैं जो देश के लिये लाभकर सिद्ध होगा । व्यक्तिगत रूप से योगिराज ने जापान अमेरिका आदि के कई युवकों को योगासन सिखाकर दीक्षित किया है जो इन दिनों स्वदेश में प्रचार कर रहे हैं । इस प्रकार योगिराज का सारा समय अब योगमय हो गया है ।

भारत में योगियों की कमी नहीं है किन्तु योगासनों से रोग निवारण का कार्य करने वाले योगी नहीं मिलते । आपसी चर्चाओं में बराबर कहा करते हैं कि कठिन से कठिन आसन दिखाकर चमत्कार पैदा करना नट का कार्य है योगी का नहीं । योगी को चाहिए कि वह सहज आसनों से प्राणी को स्वस्थ एवं सुखी रखने का प्रयास करे ।

योगिराज की चिकित्सा पद्धति देखकर अच्छे अच्छे डाक्टर और वैद्य चकित रह जाते हैं । आप प्राणी के पाँव की नाड़ी और नाभि परीक्षण कर सारे विकारों को बताते हैं और उसी के अनुरूप आसन

सिखाते हैं। किसी भी रोग को गहरा मानकर भय खाना आपने जाना ही नहीं। मैंने स्वयं देखा है। एक वृद्धा स्नायुदौर्बल्य से पीड़ित थी और सभी प्रकार के चिकित्सक उपचार करके निराश हो चुके थे। योगिराज ने महीने भर के प्रयास से उक्त वृद्धा को आधे घंटे तक पद्मासन में बैठा दिया। आज वह वृद्धा रामायण का सस्वर पाठ करती है, माला फेरती है और आने जाने वालों का हाल-चाल पूछती है। प्रातः काल स्नानादि करके वह योगिराज की प्रतीक्षा करती रहती है।

प्रसन्नता की बात है कि बिना दवाओं के प्रयोग के लोग थोड़े ही समय में स्वस्थ हो रहे हैं और योगिराज की व्यस्तता बढ़ती जा रही है। योगसाधना का ही परिणाम है कि भोर में दो बजे से उठ कर रात्रि नौ बजे तक प्रसन्नता पूर्वक समाज की सेवा में आप लगे रहते हैं। पाँच बजे प्रातः से नौ बजे दिन तक आप नगर के अनेक रोगियों के घर पहुँच कर योगाभ्यास कराते हैं और रोगी को स्वस्थ करते हैं। इस अवधि में वे रोगियों को न तो कुछ आहार लेते देते हैं और न स्वयं ही कुछ ग्रहण करते हैं। सम्भ्रान्त व्यक्तियों के विशेष आग्रह को देख कर कभी कभी उनके यहाँ इन्हें सादा पानी पीना पड़ता है।

मजे की बात यह है कि रोगों से मुक्ति पाने वाला व्यक्ति जब इन की प्रशंसा करने लगता है तो ये कह उठते हैं कि -यह आप की साधना और योग विद्या की देन है, इसमें मेरा कोई यहसान नहीं है। जब इन्हें कोई 'गुरु जी' कहता है, तब भी ये यही कहते हैं।

एक महत्वपूर्ण बात जो मुझे पहले ही कहनी चाहिए थी, यह है कि योगिराज श्री हनुमान जी के परम भक्त हैं और उनकी उपासना में निरन्तर लगे रहते हैं। अपनी उपलब्धियों को भी आप हनुमान जी की देन मानते हैं। जटिल समस्याओं के समाधान में आप हमेशा हनुमानजी से प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि योगिराज उसी नियन्ता की प्रेरणा से

मानव कल्याण में निरन्तर लगे हुए हैं। भारतीय होने के नाते इस बात को मैं सर्वोपरि मानता हूं कि बिना किसी दिव्य प्रेरणा से कोई प्राणी इतने महान कार्य नहीं कर सकता।

यही कारण है कि इतने अल्प समय में इन्होंने इतनी अधिक प्रसिद्धि एवं सफलता प्राप्त की है। वाराणसी में इनकी चिकित्सा से आश्चर्य जनक स्वास्थ्य लाभ पाने वाले इन्हें बड़ी श्रद्धा से गुरु के रूप में आदर देते हैं और समय-समय पर अपने परिचितों को रोगों से मुक्ति पाने के लिए इनकी शरण में जाने के लिए प्रेरित करते रहते हैं।

कभी-कभी ऐसा भी अवसर आता है जब अन्य प्रदेशों एवं नगरों में ले जाने के लिए इनसे आग्रह किया जाता है किन्तु अपने निर्देशन में चल रहे लोगों को छोड़कर हफ्ते दो हफ्ते के लिए कहीं जाना संभव नहीं हो पाता। कुछ समाजसेवी लोग अन्य नगरों में योग शिविर चलाना चाहते हैं तो राह सवारी की सुविधा मिलने पर सप्ताह में एक दिन के लिए चले भी जाते हैं।

संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के एक विद्वान प्राध्यापक जो स्वयं योगासन करते हैं, एक दिन योगिराज से कुछ कठिन आसन दिखाने को कहा। शायद उन्हें इनकी साधना पर विश्वास नहीं था। योगिराज ने एक ही साथ तीन-तीन आसन लगाकर उन्हें चकित कर दिया। योगिराज उस दिन लगातार २ घण्टे तक आसन दिखाते रह गये और लोगों के बहुत आग्रह करने पर रुके। उस समय उनकी छवि देखने लायक थी।

एक दिन अन्तरंग वार्ता के दौरान मैंने कहा - मित्र अपने साधना में विलक्षण सफलता प्राप्त की है और उसके बल पर अनेक लोगों का कल्याण किया है किन्तु आपने कभी यह नहीं बताया कि आपने किस

गुरु से दीक्षा प्राप्त की है? योगिराज ने गम्भीर होकर कहा यह

भी एक संयोग ही था। एक वयोवृद्ध महात्मा जी मुझे बचपन में गांव में ही गंगा तट पर मिले थे। बड़े प्यार से उन्होंने मुझको आसन सिखाया। यह क्रम महीनों तक चलता रहा। प्रातः काल रोज ही मैं एकान्त किनारे पर पहुंच जाता था और वे आसन सिखाने के लिए मेरी प्रतीक्षा करते रहते थे।

कुछ रुक कर उन्होंने कहा लेकिन उसके बाद वे फिर मुझसे कभी नहीं मिले। वैसे मेरे ध्यान में वे प्रतिदिन उपस्थित होते हैं।

इस प्रकार की घटना से यही सिद्ध होता है कि योगिराज को उस दिव्य विभूति द्वारा दीक्षा मिली है जिन का नाम नारायण स्वामी था। वे बलिया के निवासी थे और काशी में संन्यास ग्रहण कर मानव मात्र के कल्याणार्थ गांवों में घूमते रहे। आप ने मीरजापुर में १९७४ में शरीर त्याग किया था।

अष्टांग योग

योग को समझने औ़र उस पर चलले के लिए उसे आठ अंगों में विभक्त किया गया है जिसे अष्टांग योग कहते हैं। योग दर्शन के अनुसार ये आठों अंग इस प्रकार हैं :-

(१) यम
(२) नियम
(३) आसन
(४) प्राणायाम
(५) प्रत्याहार
(६) धारणा
(७) ध्यान
(८) समाधि

यमः-योग दर्शन में यम की बड़ी महिमा बताई गई है। कहा है कि देश, काल, जाति और समय में निबद्ध न रह कर यम का पालन महाव्रत है। अहिंसा, सत्य, अस्तये, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम हैं।

अहिंसा-मन कर्म और वचन से किसी भी प्राणी को दुःख न देना अहिंसा है। साधारण रूप में किसी को चोट पहुंचाना या किसी पर आघात अथवा आक्रमण करना हिंसा है। महात्मा गाँधी ने इस व्रत का न केवल परिपालन किया बल्कि संपूर्ण मानव जाति को अहिंसा के लिए प्रेरित भी किया। महर्षि रमण, कण्व ऋषि आदि ने अहिंसा व्रत का पालन किया था ऐसे व्रती के सामने आदमी ही नहीं हिंसक जानवर भी अपनी प्रवृत्ति भूल जाते हैं। ऐसे ही साधक सांपों अथवा सिंहों के साथ खेलते देखे जाते हैं।

अकेले अहिंसा व्रत पालन से काम क्रोध मद लोभ आदि विकार

नष्ट हो जाते हैं। अहिंसा की दृढ़ता पर सभी प्राणी वैर भाव त्याग देते हैं।

सत्यः सत्य दूसरा यम है। वेदों में भी सत्य की महत्ता वर्णित है। सत्यवादी व्यक्ति की वाणी सिद्ध हो जाती है। उसके मुख से निकाला वाक्य ब्रह्मवाक्य बन जाता है। इन्द्रियों तथा मन से प्रत्यक्ष देखा हुआ अथवा अनुमान द्वारा अनुभव किया हुआ सत्य, प्रिय एवं हितकर वचन ही सत्य कहा जाता है। शास्त्रानुसार अप्रिय सत्य वर्जित है।

सत्याचरण तलवार की धार पर चलने के समान कहा गया है। राजा हरिश्चन्द्र की सत्यवादिता का आज तक गुणगान किया जाता है। जिन्होंने सत्य पालन हेतु अनेक कष्ट सहे। सत्य पालन से आदमी के विकार दूर होते हैं एवं सूक्ष्म शक्तियों का विकास होता है।

अस्तेयः– पर द्रव्येषु लोष्ठवत्–की भावना रखना अस्तेय है। स्तेय का शाब्दिक अर्थ चोरी होता है। अतः अस्तेय चोरी न करने के लिये दूसरे की सम्पत्ति अथवा वस्तु पर अनाधिकार चेष्टा नहीं करनी चाहिये। अस्तेय सांसारिक क्रिया कलापों में ग्राह्य है। रिश्वत, मिलावट अधिक मूल्य, कम तोलना आदि से बचना चाहिये। इस आर्थिक युग में अस्तेय के अभाव में तमाम विकृतियाँ दिखायी पड़ती हैं।

आजका सामान्य प्राणी अस्तेय के बारे में चाहकर जागरूक नहीं हो पाता। ऐसी मान्यता समाज में व्याप्त हो गयी है। संप्रति आज का प्राणी अपनी विलासिता एवं संग्रह मूलक भौतिकवादी प्रवृत्ति के कारण अस्तेय व्रत का परिपालन असंभव मान बैठा है। जिन बाल-बच्चों और परिवार वालों के लिये लोग पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए अस्तेय व्रत का पालन करते थे उन्हीं बाल बच्चों के लिये आज लोग उसके प्रतिकूल चल रहे हैं। संसार की अपनी

आवश्यकताएँ कम किये बिना और संसार की निःसारिता को समझे बिना इस व्रत का पालन सचमुच कठिन है।

ब्रह्मचर्य : 'सर्व प्रकारेण' वीर्य रक्षा ही ब्रह्मचर्य है। योगिक अर्थ में ब्रह्मावेद को कहते हैं। अतः वेदाध्ययन के लिये उपयुक्त आचरण करना ब्रह्मचर्य कहलाता है। मानव जीवन की उपलब्धि ब्रह्मचर्य में निहित है। चार आश्रमों में बंटा हुआ मानव जीवन ब्रह्मचर्य आश्रम पर टिका हुआ है अर्थात् आरम्भ के २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य बताया गया है। ऐसा आचरण करने वाला व्यक्ति शेष तीन आश्रमों का भी सफलता पूर्वक निर्वाह कर सकता है। ब्रह्मचर्य दृढ़ स्थिति होने पर व्यक्ति में अपार शक्ति का संचय होता है जिसके बल पर वह समस्त संकल्पों को पूरा कर सकता है।

अपरिग्रह : धन अथवा संपत्ति का संग्रह न करना अपरिग्रह कहलाता है। संग्रही मनोवृत्ति से मोह ममता स्वार्थपरता तथा भय आदि विकार उत्पन्न होते हैं। अपरिग्रही व्यक्ति ही परमार्थी निःस्वार्थी निर्भय तथा अनाशक्त हो सकता है। ऐसा व्यक्ति ही समता का भाव प्राप्त कर सकता है। आज के समाजवादी युग में अपरिग्रह की नितान्त आवश्यकता है। अपरिग्रही व्यक्ति ही सही अर्थों में मानव बन पाता है।

नियम : शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरशरणागति ये पांच नियम कहे गये हैं।

शौच : आन्तरिक एवं वाह्य दोनों प्रकार की स्वच्छता एवं पवित्रता शौच कही जाती है। मन विचारों की शुद्धि से ही व्यक्ति की आत्मिक उन्नति होती है। जब तक हमारे विचार शुद्ध नहीं होंगे तब तक इर्ष्या अभिमान तथा घृणा आदि दोष हमसे दूर नहीं हो सकते।

सन्तोषः-अपनी भौतिक आवश्यकताओं को सीमित रख कर हर प्रकार की परिस्थितियों में सन्तुष्ट एवं प्रसन्न रहना सन्तोष है । अच्छे-अच्छे साधु, सन्त भी इस व्रत को भूल बैठते हैं और पर्याप्त सफलता प्राप्त करने पर भी प्रसन्न नहीं रह पाते । तथ्यतः उपलब्ध साधनों में तृप्ति का अनुभव किये बिना सन्तुष्ट नहीं रहा जा सकता । अतृप्ति का दूसरा नाम तृष्णा है । तृष्णा ऐसी बुरी लत है जो आदमी को कभी भी सन्तुष्ट नहीं होने देती । एक के बाद दूसरी के लिए वह परेशान रहता है ।

इसीलिए सन्तोषं परमं सुखम् कहा गया है ।

तपः–सुख, दुःख, सर्दी, गर्मी भूख प्यास, मान अपमान अथवा कष्ट व्याधि का सहन करना तप है । तप का अर्थ ही कष्ट सहन करना होता है ।

तमाम कष्ट सहन करने के बाद योगी सिद्धियों की प्राप्ति करता है । जिस प्रकार सोने को आग में तपाने से उसके विकार जल जाते हैं और शुद्ध सोना प्रकट होता है, उसी प्रकार योगी तप करके अपने विकारों, मलों को जलाकर स्वयं देदीप्यमान स्वरूप प्राप्त करता है ।

तप द्वार इन्द्रियाँ असाधारण रूप से शक्ति प्राप्त कर लेती हैं जिससे साधना का मार्ग सुगम हो जाता है ।

स्वाध्यायः–सद्ग्रंथों का स्वयं अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है। वास्तव में वेदों-शास्त्रों आदि का पढ़ना और मनन करना स्वाध्याय की प्रारम्भिक स्थिति है। स्वाध्याय का आन्तरिक एवं मूल स्वरूप है आत्मचिन्तन करना ।

आत्मचिन्तन के लिए हमें कुछ समय तक स्वच्छ एकान्त स्थान पर बैठकर सद् ग्रन्थों के अध्ययनोपरान्त आत्मचिन्तन करना स्वाध्याय है । स्वाध्याय का सही अर्थ अपने को पढ़ना है । आज कल हम दूसरों के अध्ययन में अपना सारा समय लगा देते हैं किन्तु अपना अध्ययन नहीं

करते मन की पवित्रता के बिना मानसिक चिन्तन सिद्ध नहीं होता। अतः मानसिक वृत्तियों की छान बीन करना ही स्वाध्याय है।

ईश्वर प्रणिधानः—अपने रोम-रोम में ईश्वर को समाया हुआ मानना ईश्वर प्रणिधान का मूल मर्म है। इस साधना में ईश्वर को अपने मन मन्दिर में वैठाना, हृदय में धारण करना, मन, प्राण और इन्द्रियों के समस्त कर्मों में उसकी व्याप्ति का अनुभव करना चाहिए। विश्वकी समस्त गतिविधियाँ तथा अपने चतुर्थिक हुए क्रिया कलापों को ईश्वरीय गति मानना और अपने कर्मों तथा परिणामों को ईश्वर को समर्पित करने से मोह, ममता आसक्ति आदि का प्रभाव कम होता है।

आसनः—योग साधना की सिद्धि हेतु अर्थात् उसकी आगामी क्रियाओं के लिए शरीर को उसके अनुरूप बनाने हेतु आसन नितान्त जरूरी है। आसन सिद्ध न होने पर ध्यान, धारणा और समाधि आदि में विघ्न आते हैं। आसन का अर्थ है किसी निश्चित स्थिति में सुख पूर्वक बैठना। आसन की सिद्धि तब मानी गई है जब कि कम से कम साढ़े तीन घंटे तक विना हिले डुले साधक एक स्थिति में बैठा रह सके। महर्षि पतंजलि ने 'यत्र स्थितो यत्नोभ्यासः' कहकर साधक को उत्साहित किया है। ताकि साधक आसन सिद्धि हेतु यत्न पूर्वक अभ्यास करता रहे। योग दर्शन के अनुसार आसन सिद्ध हो जाने पर शीत, ताप, भूख, प्यास आदि सहन करने की क्षमता आश्चर्यजनक रूप से बढ़ जाती है।

प्राणायामः—प्राणवायु को वारंवार बाहर निकालने और रोकने को प्राणायाम कहते हैं जिसके अभ्यास से चित्त निर्मल हो जाता है। चित्त की अपवित्रता को दूर करने के लिए प्राणायाम का विधान है।

आसन की सिद्धि होने पर योग विधा में प्राणायाम का महत्वपूर्ण स्थान है। निर्मल चित्त से ही एकाग्रता आती है अतः नियमित प्राणायाम कर चित्त को निर्मल करना चाहिए।

पूरक कुंभक और रेचक प्राणायाम की ये तीन अवस्थायें होती हैं। ब्रह्म मुहूर्त में नित्य क्रिया से निवृत होकर स्वच्छ आसन पर पद्मासन लगाकर अपने ईष्ट का ध्यान करते हुए नियमित प्राणायाम करने से विवेक एवं शक्ति प्राप्त की जा सकती है। मानसिक दौर्बल्य एवं मन की चंचलता दूर करने हेतु प्राणायाम उत्तम साधन है।

प्रत्याहार:—इन्द्रियों का चित्त के स्वरूप में तदाकार होना ही प्रत्याहार है। चित्त की चंचलता समाप्त हो जाने पर जब इन्द्रियां अन्तर्मुखी होकर चित्त के नियन्त्रण में चलने लगती हैं, उसे प्रत्याहार कहते हैं।

तथ्यत:—इन्द्रियों को वश में करने के अभ्यास को प्रत्याहार कहा गया है। यम, नियम और प्राणायाम आदि क्रियाओं की सिद्धि के बाद प्रत्याहार की स्थिति कठिन नहीं रह जाती।

धारणा:—योग दर्शन में 'देश वन्ध चित्तस्य धारणा' कहा गया है। अर्थात् एक निश्चित सीमा में चित्त को बाँधना ही धारणा है। चित्त की चंचलता को दूर करने के लिए उसे स्थान विशेष पर ठहराने का अभ्यास करना आवश्यक है। इसी अभ्यास का नाम धारणा है।

ध्यान:—धारणा की परिपक्वावस्था को ध्यान कहते हैं। किसी निश्चित सीमा में चित्त को स्थिर कर साधक जब अपने आराध्य को वहाँ अनवरत देखने का अभ्यस्त हो जाता है इसी स्थिति को ध्यान कहते हैं।

समाधि:—जिस प्रकार धारणा की परिपक्वावस्था ध्यान है उसी प्रकार ध्यान की परिपक्वावस्था समाधि है। आराध्य का चिन्तन करते करते साधक ध्यान मुद्रा में होकर जब तदाकार हो जाता है। इसी अवस्था को समाधि कहते हैं।

इस प्रकार यम से चलकर समाधि तक के आठ चरणों में अष्टांग

योग को सहज ग्राह्य बनाने का प्रयास हमारे ऋषियों ने किया है। जैसे कठिन आसनों को सिद्ध करने के लिए उसे टुकड़ों में बांटकर अभ्यास किया जाता है उसी प्रकार समाधि तक पहुंचने के लिये यम नियम आदि का सहारा लिया जा सकता है।

साधक को चाहिए कि साधना आरम्भ करने से पहले अष्टांग योग के विविध अंगों को ध्यान पूर्वक समझ ले। ऐसा करने से वह अपना मार्ग प्रशस्त कर सकेगा और उसे इस बात का ध्यान रहेगा कि उस की मंजिल कहां है और वह कहां तक पहुंच चुका है।

भक्ति योग

योगासन स्वस्थ और संयमित रहने का साधन मात्र है। योग शब्द का मूल अर्थ है ईश्वर में जीव का विलय। इसीलिए हमारे हिन्दू धर्म में इसके लिए परमात्मा की उपासना का विधान है। इस प्रकार हमारे यहाँ ईश्वर की उपासना के तीन मार्ग बताये गये हैं—

१. ज्ञान योग

२. कर्म योग

३. भक्ति योग

श्रीमद्‌भागवत का उद्‌घोष है—

ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोभ्योस्ति कुत्रचित्।

अर्थात्—ज्ञान योग, कर्म योग और भक्ति योग से पृथक आत्म निर्माण (उद्धार) का कोई अन्य मार्ग नहीं है। इसमें भी जन सामान्य के लिए भक्ति योग ही श्रेयस्कर है क्योंकि ज्ञान मार्ग पर विद्वान ही चल पाता है और कर्म योग की साधना वेदज्ञ ही कर पाते हैं। इसका अर्थ यह नहीं लगाना चाहिए कि सामान्य प्राणी विद्वान या वेदज्ञ नहीं हो सकता। वास्तव में भक्ति योग सहज है किन्तु ज्ञान और कर्म में अनेक बाधायें हैं। जिस प्रकार मैंने आसनों के बारे कहा है कि यदि सामान्य आसन से ही ऐसी युक्ति पा जाता है तो उसे कठिन आसनों के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए, क्योंकि उनकी साधना आसान न होने से उससे लाभ नहीं उठाया जा सकता।

उदाहरण के लिए भगवान नारद की घटना को देख सकते हैं। वे प्रभु के ज्ञानी उपासक कहे जाते हैं। नारदजी को अपने ज्ञान पर गर्व भी था। कथा आप को विदित ही है। भगवान ने उनके गर्व को चूर करने के लिए मार्ग में विश्वमोहिनी का स्वयंवर रचा दिया। नारद जी

मोहित हो गये । फिर उन्हें चैन कहां ! ज्ञानी और पंडित तो थे ही, उन्होंने तत्काल समाधान ढूंढ़ा और भगवान से ही उनका रूप उधार लेने चल पड़े ।

यहाँ तथ्य की बात यह है कि मनमें विकार आते ही ज्ञान कुण्ठित हो जाता है, सो नारद जी का भी वही हुआ । उनका ज्ञान विलुप्त हो गया । वे यह भूल गये कि ब्रह्म एक है । वह सब कुछ गढ़ सकता है, संसार बना बिगाड़ सकता है किन्तु दूसरा ब्रह्म नहीं गढ़ सकता । फिर भी नारद जी ने भगवान से उनका रूप मांगा ।

भगवान् मुस्कुराये और यह कह कर कि आपका हित मैं अवश्य करूँगा, और नारद को रूप प्रदान कर दिया । किन्तु यह क्या, नारद की ओर सुन्दरी ने देखा ही नहीं और स्वयंवर में जुटे राजा उन्हें देख कर हंसने लगे । इसी बीच भगवान स्वयं आये और सुन्दरी को व्याह कर चले गये ।

नारद ने जब पानी में अपना चेहरा देखा तो क्रोध से पागल हो गये ! काम के बाद क्रोध का ही नंबर आता है । फिर तो उन्होंने भगवान को शाप तक दे डाला । लेकिन भगवान मुस्कुराते ही रहे और संयत स्वर में बोले—

नारद, तुम मेरे ज्ञानी भक्त हो ! अबोध बच्चा दहकती आग को छूने के लिए बढ़ता है तो लोग उसे पकड़ लेते हैं किन्तु समझदार प्राणी के आग में कूद जाने पर भी आशंका नहीं रहती ।

परिणाम वही हुआ जो नासमझी का होता है । नारद ने चरणों में गिरकर क्षमा मांगी और अपने द्वारा दिये गये शाप के प्रति पश्चात्ताप करने लगे ।

किन्तु भक्ति का मार्ग सुगम है । विनति भक्ति की प्रथम और समर्पण उस की अन्तिम स्थिति है । सत्य तो यह है कि भक्ति का अनु-

गामी अपनी उपासना के बल पर ज्ञान योग एवं कर्म योग को भी जान लेता है। भक्ति योग में उपासक अपनी विनति, आस्था एवं उपलब्धि आदि सबकुछ को अपने आराध्य की कृपा मानता है। गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में—

सोइ जानइ जेहिं देउ जनाई
जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होइ जाई

सिंगार के कवि बिहारी ने

लाली देखन मैं गई,
मैं भी ह्वै गई लाल

कहकर भक्ति मार्ग के पूर्ण समर्पण की ओर संकेत किया है। उपासक द्वैत के भेद को भूलकर जब एकाकार हो जाता है तो भक्ति योग अपनी चरमावस्था को पहुँच जाता है।

भक्ति मार्ग की गामिनी गोपियों को ज्ञान का उपदेश देने निकले ऊधव अपने ज्ञान की गठरी खो बैठते हैं। भक्त को ज्ञान की क्या आवश्यकता? कर्म भी उसके लिए बेकार है। वह अपने भगवान को आँसुओं से नहलाता है, गंगाजल और वेद मंत्र लेकर क्या करेगा।

ऊधव जी जब गोपियों को निराकार ब्रह्म की ज्ञानमयी उपासना का उपदेश देने लगे तो गोपियों के पल्ले कुछ नहीं पड़ा। उन्होंने ऊधव को फटकारते हुए कहा—

तुम्हारे निराकार ब्रह्म को लेकर हम क्या करेंगे। क्योंकि—

कर बिनु कैसे गाय दुहिहैं हमारी वह
पद बिनु कैसे नाचि थिरकि रिझाइहैं
कहै रत्नाकर वदन बिनु कैसे चाखि
माखन बजाइ वेनु गोधन गवाइहैं
सुनि धुनि कैसे दृग श्रवन बिना ही हाय

भोरे व्रजवासिन की विपदा बराइहैं

रावरो अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म
ऊधौ कहौ कौन धौं हमारे काम आइहैं

यही है भक्ति योग का चमत्कार। भक्त भगवान की सेवा करते करते जब थक जाता है तब भगवान को उसकी सेवा करनी पड़ती है। हमारे धार्मिक ग्रन्थों में ऐसी अनेक कथायें मिलती हैं जिनमें भगवान अपने भक्तों की टहल करता है, उनके आगे पीछे सेवक की तरह खड़ा रहता है।

बचपन में मैंने एक अजीब कहानी सुनी थी। कोई चरवाहा जंगल में रोज अपने पशुओं को चराने जाया करता था। जंगल में ही एक पुराना मंदिर था और वह चरवाहा घर लौटते समय शिव की मूर्ति को पाँच डंडे मारकर आता था। यह उसका नित्य का क्रम था। एक दिन संयोग से वह अपने पशुओं के साथ दूसरी दिशा की ओर निकल गया जिससे वह शंकर की मूर्ति को लाठी नहीं मार सका। यह ध्यान उसे तब आया, जब वह शाम को अपने घर खाने बैठा। फिर क्या था, भोजन छोड़ कर वह रात ही में जंगल में गया। कहते हैं भगवान शंकर को जब वह मारने लगा, वे प्रसन्न होकर प्रकट हो गये। और इस प्रकार उस अबोध चरवाहे भक्त को वह सबकुछ मिल गया, जिसकी कि उसे कभी कल्पना भी नहीं थी। क्यों कि वह 'मां फलेषु कदाचन' की भावना से केवल अपने कर्तव्य का पालन करता था। भगवान पर इस से क्या गुजरती होगी, उसे इस का भी ध्यान नहीं था। एक ग्रामीणभक्त की कहानी तो और मार्मिक है। उस के गुरु कुछ दिनों के लिये कहीं यात्रा पर जाने लगे तो उसे अपने भगवान की मूर्ति सौंप कर चले गये। गुरु के जाने के बाद उसने भगवान को और भी अच्छे ढंग से नहलाने के लिये समीप की नदी में ले जाकर डाल दिया और घंटों प्रतीक्षा करने के बाद भी जब मूर्ति बाहर न निकली तो बिगड़ कर गालियां देने लगा।

उसकी प्रगाढ़ भक्ति पर रीझ कर भगवान को न केवल बाहर आना
पड़ा बल्कि उसके आदेशानुसार खाना-पीना-सोना-उठना आदि सारे कार्य करने पड़े। गुरु के लौटने पर जब उसने सारी घटना वताई तो गुरु भी चकित रह गये। जन्म से पूजा करने पर भी गुरु जो नहीं प्राप्त कर सके, शिष्य ने एक दिन में पा लिया था। इस प्रकार भक्ति योग में ईश्वर अत्यन्त सहज एवं सामान्य रूप में भक्त के आस - पास विद्यमान रहता है। हमारे यहाँ उपासना पद्धति पर निरर्थक लड़ाई अधिक देखने को मिलती है किन्तु उपासकों और साधकों का सर्वथा अभाव रहा है। सच्चा उपासक व्यर्थ के झमेले में नहीं पड़ता। वह सर्व प्रकारेण अपनी साधना में लगा रहता है। वह इस वात की चिन्ता नहीं करता कि उसके आराध्य को कितने लोग भजते हैं, उसकी मूर्ति सोने - चाँदी की क्यों नहीं है या उन्हें भोग लगाने के लिये सुस्वादु व्यंजन कहां से लाया जाय।

सच्चा उपासक जैसी–जैसी स्थिति में भी सन्तुष्ट रहता है। केवल जल और फूल - पत्ती चढ़ाकर अपने स्वामी को प्रसन्न कर लेता है। वह किराये के पुजारी नहीं रखता और न ही चन्दे या कर्ज लेकर मन्दिरों आदि का निर्माण कराता है। मिट्टी का एक लोना लेकर वह उसे ही भगवान मान लेता है। साकार और निराकार की लड़ाई भी कम नादानी की बात नहीं। यह तो हमारे वेद भी स्वीकार करते हैं कि ईश्वर साकार और निराकार दोनों है। वास्तव में उपासक की भावना पर प्रभु अपना रूप वना लेते हैं। गीता में भगवान ने स्वयं यही वात कही है।

योगवासिष्ठ में एक बड़ा ही सटीक उद्धरण देकर साकार उपासना के महत्व को समझाया गया है।

अक्षराकाम लब्धये यथा वर्तुलद्दृषत्परिग्रहः।

शुद्ध-बुद्ध परिलब्धये तथा दारु मृण्मयशिलामयार्चनम्॥

वच्चों को अक्षरों का परिचय कराने हेतु जिस प्रकार छोटे बड़े कंकड़ों का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार शुद्ध-बुद्ध परब्रह्म का ज्ञान करने हेतु लकड़ी, मिट्टी अथवा पत्थर की मूर्तियों को स्वीकार किया जाता है।

इस प्रकार भक्ति योग की सहज उपलब्धि को समझते हुए प्राणी को इस ओर आने में झिझक नहीं करनी चाहिए।

भगवान सहजता से भक्तों के वश में हो जाते हैं। उन्होंने स्वयं कहा है।

हम भगतन के भगत हमारे।

ज्ञानयोग

विश्व के समस्त पदार्थों में एक ही परम ब्रह्म परमेश्वर व्याप्त है इसी अनुभूति के अधार पर 'गीता रहस्य' में लोकमान्य तिलकने ज्ञान की परिभाषा इस प्रकार दी है–'सब में एक ही अविनाशी परमेश्वर समा रहा है, इस सभझ का नाम ज्ञान है' समर्थ गुरु रामदास ने अपनी 'दास बोध' पुस्तक में लिखा है–'जिससे परमात्मा जानने में आता है।' आगे वे अपना अनुभव भी व्यक्त करते हैं–जिधर देखता हूँ उधर ही वह दिखाई देता है। वह एक ही प्रकार का है। वह स्वतंत्र है। उसमें द्वैत नहीं है। ईसामसीह कहते हैं, 'मैं और मेरे पिता एक हैं। दोनों में कोई अन्तर नहीं है। आदि शंकराचार्य सब में शुद्ध और नित्य ब्रह्म को व्याप्त देखते हैं और कहने हैं कि ब्रह्म दृष्टि से दिखाई देने वाली पदार्थों में भिन्नता सत्य नहीं है।

गीता में ज्ञानीका लक्षण इस प्रकार बताया गया है (अध्याय ५ श्लोक २०) जो व्यक्ति प्रिय वस्तु से प्रायः प्रसन्न नहीं होता और अप्रिय की प्राप्ति पर खिन्न नहीं होता उसकी बुद्धि स्थिर रहती है। जो मोह जाल में जकड़ा नहीं रहता, उसी ब्रह्म ज्ञानी को ब्रह्म में स्थित हुआ समझना चाहिये। स्मृति कहती है, जो साधक ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त कर लेता है वह सांसारिक कार्यों को करते हुए कृष्ण और जनक की तरह उसमें लिप्त नहीं होता। गीता में ज्ञानकी इसी श्रेष्ठता को अभिव्यक्त करते हैं। चौथे अध्याय के ३८ वें श्लोक में कहा गया है कि इस ज्ञानसे बढ़कर संसार में कोई चीज नहीं है। इस प्रसंग में एक

कहानी द्रष्टव्य है—किसी व्यक्तिको ऐसा लगा कि उसे संसार की असारता का ज्ञान हो गया है। वह अपनी पत्नी के साथ यात्रा पर निकला। रास्ते में उसे सोने का हार गिरा हुआ दिखाई दिया। उसने समझा कि पत्नी को इसे देखकर लालच न हो जाय, वह हार पर मिट्टी फेंकने लगा, किन्तु पत्नी ने उसे ऐसा करते देख लिया। उसने सहज शब्दों मे पति से कहा क्यों मिट्टी पर मिट्टी फेंकते जा रहे हो ? पत्नी की इस बात पर लज्जित होकर उस व्यक्ति ने कहा कि तुम मुझ से आगे हो।

इसी प्रकार की अनेक घटनाएं मिलती हैं। वस्तुतः ज्ञान के बिना योग नहीं हो सकता और योग के बिना ज्ञान अधूरा है। रामगीता के अनुसार ज्ञान प्राप्ति के लिए योग को माध्यम बनाया गया है। कहते हैं—ज्ञानियों का स्नान समाधि है। समाधि ज्ञानियों के लिए जप, तप यज्ञ है। समाधि की उपलब्धि के संदर्भ में गीता के ७ वें अध्याय में भगवान श्री कृष्ण स्वयं कहते हैं—अनेक जन्मों के बाद तत्व ज्ञानकी प्राप्ति होती है और ज्ञानी सब कुछ मुझे ही मानकर भजता है। ज्ञान बिना पापों की निवृत्ति के लिए प्रयत्न नहीं किया जा सकता और इस सतत प्रयत्न के पश्चात् पाप से विमुख होकर सत् कर्मों में मन लगता है और तब मोह का नाश होता है एवं ईश्वर की प्राप्ति होती है। संतों एवं सद्ग्रन्थों के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि सच्चे सुख शान्ति के लिए प्राणी को ज्ञान की ओर उन्मुख होना पड़ेगा। संत कवि तुकारामने ज्ञान को गूंगेका गुड़ कहा है। सचमुच गूंगा गुड़ का स्वाद कैसे बता सकता है।

गीता के छठें अध्याय के ८ वें श्लोक को ध्यान से पढ़ें तो स्पष्ट होता है कि जब आत्मा ज्ञान से तृप्त होकर इन्द्रियोंपर विजय प्राप्तकर लेता है मिट्टी, सोना, और पत्थर में भेद नहीं मानता और तब वह सिद्धावस्थाको प्राप्त हो जाता है।

ज्ञानविज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ॥

ज्ञानकी प्राप्ति में अनेक बाधाएं हैं। समयाभाव सबसे बड़ी बाधा है, क्यों कि हमने अपने जीवनको स्थायी मानकर अपने को ऐसे कामों में लगा दिया है कि एक क्षण भी विश्राम के लिए भी अवकाश नहीं। भौतिकता में हम इतने रंग गये हैं कि हमारी आवश्यकताओं का कोई अन्त नहीं है। वर्तमान शिक्षा और समाजने हमपर ऐसे संस्कार डाल दिये हैं कि हमें स्वयं अध्यात्म-ज्ञान उपहास-सा प्रतीत होता है। आज हम यह भूल गये हैं कि ब्रह्मांड का सूक्ष्म रूप यह शरीर पिंड है जो अपार शक्ति से परिपूर्ण है। यह ज्ञान साधना से ही संभव हो सकता है गीता कहती है कि—इस विश्व में ज्ञान से बढ़कर पवित्र करने वाला और कुछ नहीं है।

वर्तमान युगकी तमाम विकृतियों एवं अमानवीय वातावरण को दूर करने के लिये जहां हमें दूसरों से सद्भाव की अपेक्षा करनी है वहीं स्वयं भी आत्मशुद्ध होना आवश्यक है। समस्त सांसारिक कर्मों को करते हुये उनमें लिप्त न होने के साथ ही हमें कुछ क्षण एकान्त चिन्तन में लगाना आवश्यक है। यह ज्ञान योग का पहला पाठ है।

स्वच्छ स्थानपर स्वच्छ वस्त्र पहनकर स्वच्छ आसनपर निर्मल मन से सुबह-शाम सुखासन अथवा पद्मासन पर बैठकर ईश्वर का ध्यान करते-करते हम अपनी साधना बढ़ा सकते हैं। यह अनुभूत सत्य है कि इसके द्वारा प्राणी सुख-शान्ति एवं उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त कर सकता है। आत्मसाधना ज्यों ज्यों बलवती होगी हमारे विकार स्वयं दूर होते जायेंगे। साधना के बलवती होने पर संसार की असारताका बोध होने लगता है और सांसारिक वस्तुओं से राग कम होते-होते छूट जाता है। झूठी आवश्यकताओं का जाल बुन कर जो मन मकड़ी की तरह उसमें स्वयं फंसा रहता है, धीरे-धीरे स्वयं उनसे विरक्त हो जाता है।

इस संदर्भ में एक ऐतिहासिक घटना याद आती है। सम्राट अकबर ने सन्त कवि रहीम को विपन्नवस्था में भिखारी की तरह भटकते देखकर कहलवा भेजा कि रहीम दरबार में आकर चैन से रहें किन्तु रहीम सचमुच सन्त थे। उन्हों ने अकबर के पास एक दोहा लिखकर भेज दिया है।

चाह गयी चिन्ता मिटी मनुआं वेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिये वे साहन के साह॥

सचमुच यदि हम अपनी झूठी आश्यकताओं को समाप्त कर सकें तो साधना के क्षेत्र में हमारा मार्ग प्रशस्त हो सकता है। ज्ञान योग का यही आरम्भिक मार्ग और अन्तिम मार्ग है।

योग साधना की विद्या है

विश्व के तमाम देशों में जब से योग के प्रति आकर्षण हुआ है तब से योग के प्रदर्शकों की बाढ़ आ गयी है। जिधर देखिये जादूगरों की तरह बहुतेरे लोग मजमें लगाते मिलते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इन आसनों के प्रदर्शन का (यदि वे सही हैं) दर्शकों पर अच्छा प्रभाव पड़ सकता है। किन्तु उनकी कठिनाइयों एवं लाभ के बारे में सही जानकारी न होने के कारण लोग इसके महत्व को न समझते हुए चमत्कार अथवा तमाशा मानकर इसे मनोरंजन का साधन समझ बैठते हैं। अतः आज हमें इस बात पर गम्भीरता पूर्वक विचार करना है कि योग प्रदर्शन की नहीं साधना की विद्या है।

जब हम अपना प्राचीन इतिहास देखते हैं तो ज्ञात होता है कि हमारे ऋषि-महर्षि अपनी साधना को एकान्त एवं गुप्त स्थानों में सम्पादित किया करते थे। अपनी योग साधना के बलपर सैकड़ों वर्षों तक पूर्णस्वस्थ होकर जीवित रहनेवाले योगी आजभी पर्वतीय अंचलों में विद्यमान हैं। उनकी परम्परा यही रही है कि उपयुक्त व्यति को ही शिष्य बनाकर उसे दीक्षा दें। ऐसी अनेक घटनाएँ पुस्तकों में पढ़ने अथवा समाज में सुनने को मिलती हैं जिनमें गुरु ज्ञान की गम्भीरता को विस्मृत कर अनेक शिष्यों ने गुरु द्वारा प्राप्त विद्या को कौतूहल बस अनावश्यक रूप से लोगों में प्रदर्शित किया और परिणामस्वरूप उसके लाभ से वे स्वयं वंचित रह गये।

उदाहरण स्वरूप महान साधक श्यामाचरण लाहिड़ी की चर्चा प्रस्तुत है। देहरादून में अपने गुरु द्वारा इन्हें बहुत कुछ प्राप्त हुआ। गुरु ने यह भी बताया कि जन कल्याण के लिए यदि आवाहन करोगे तो मैं स्वयं उपस्थित होऊंगा। दुर्भाग्य से एक बार अपने मित्रों को विश्वास दिलाने के लिए उन्होंने अपने गुरु का आवाहन किया। वे उसी

क्षण प्रकट हो गये किन्तु बिगड़ कर बोले, मैंने तुम्हें यह शक्ति प्रदर्शन के लिए नहीं दी थी, और अब मैं तुम्हारे चाहने पर भी नहीं आऊंगा लाहिड़ी जी इस भूल के लिए अपने जीवन भर पश्चात्ताप करते रहे। इसी प्रकार अनेक घटनायें मिलती हैं जहाँ प्रदर्शन के कारण अलौकिक विद्यायें लुप्त हो गयी हैं।

योग साधना का निरुद्देश्य प्रदर्शन कुछ इसी प्रकार का है। इस तथ्य को हमें भलीभाँति समझ लेना चाहिए। जादूगर के आश्चर्य जनक करिस्मों की तरह किसी प्रदर्शक द्वारा प्रदर्शन देख कर योंही अभ्यास करना सर्वथा हानिकारक सिद्ध हो चुका है, किन्तु दूसरों के द्वारा किये गये आसनों से दर्शक को लाभ भी नहीं हो सकता, ठीक उसी प्रकार जैसे दूसरों के खाये अन्न से अपने शरीर में रक्त-मांस नहीं बन सकता। मंच पर जादूगर अपनी हथेली से रुपयों की वर्षा करता है किन्तु स्वयं भिक्षाटन पर जीवित रहता है अधकचरे प्रदर्शकों की यही स्थिति है।

आज इस बात की नितांत आवश्यकता है कि वायु प्रदूषण नकली दवाइयों एवं असंयमित जीवन में पला हुआ प्राणी सच्चे गुरु या सद ग्रन्थों की शरण में जाकर आत्मरक्षा करे।

अभ्यास ही विकल्प

योगासनों से चमत्कारी उपलब्धि की आशा भ्रमात्मक है जबतक नियमित रूप से जमकर अभ्यास न किया जाय। अर्जुन ने भगवान कृष्ण के उपदेश पर जब मन की चंचलता को रोक पाने में अपनी असमर्थता प्रकट की तो भगवान ने कहा

"अथ चित्त समाधातुं न शक्नोपि मयस्थिरम्।
अभ्यास योगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय॥

अर्थात अपने चित्त को मुझ में स्थापित करने में तुम यदि अपने को

समर्थ नहीं हो रहे हो तो हे अर्जुन अभ्यास रूप योग के द्वारा मुझे प्राप्त करने की इच्छा कर।

संस्कृत के 'युज' धातु से योग शब्द का अर्थ जोड़ना होता है। योगभाष्य समाधि को योग कहता है। महर्षि पंतजलि चित्त-वृतियों के निरोध को योग मानते हैं। वेदान्त के अनुसार जीव और आत्मा के मिलन को ही योग कहते हैं। प्रत्याभिज्ञ दर्शन ने शिव और आत्मा के अभेद ज्ञान को योग कहा है। योगवाशिष्ठ संसार सिन्धु को पार करने की युक्ति को योग कहता है। याज्ञवल्क्य जी ने आत्मा और परमात्म के संयोग को ही योग माना है।

इस प्रकार तमाम प्राचीन ग्रन्थों एवं ऋषियों के मतानुसार योग मुक्ति का साधना है।

ऋग्वेद के अनुसार शरीर त्याग के वाद जो चार प्रकार के जीव सीधे ब्रह्म में जा मिलते हैं उनमें एक योगी भी है। सम्पूर्ण रूप से योग साधना में दक्षता प्राप्त करके महर्षि ने इसे आठभागों में विभक्त किया है जिसे अष्टांग योग कहते हैं जिसका परिचय पीछे ही दिया जा चुका है।

प्रश्न अब यह उठता है आज के व्यस्त वातावरण में प्राणी योग में साधना कैसे करे ? आरम्भ में मुझे स्वयं इन कठिनाइयों से गुजरना पड़ा है। अतः साधना की ओर उन्मुख व्यक्ति को तमाम पद्धतियों के जाल में न फसकर योग्य गुरु के निर्देशन में आसनों से साधना का शुभारम्भ करना चाहिए। सही तरीके से किये गये आसनों से हम उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं और विवेकपूर्ण मार्ग से चल कर अगली मंजिल भी तैं की सकती है। हमें सतपुरुषों द्वारा बतायी गई यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि एक अच्छाई को दृढ़ता पूर्वक ग्रहण

करने से तमाम अच्छाइयां स्वयमेव आजायेंगी। महात्माओं का तो यहाँ तक कहना है कि तप, प्रायाणाम, उपासना, जप आदि में से किसी की साधना के वल पर प्राणी सब कुछ प्राप्त करने के साथ ही जीवन मुक्त हो सकता है। किसी संत की उक्ति यहाँ द्रष्टव्य है।

ताववेद निरोद्धव्यं यावद्धदि गतंक्षयम्।
एतंज ज्ञानन्ज व्याज्य शेषेन्यों ग्रन्थविस्तार ॥

तव तक मन का निरोध करे जब तक कि सब वासनायें नष्ट न हो जायें। यही ज्ञान है, यही ध्यान है बाकी सब ग्रन्थों का विस्तार है।

आहार

हमारे जीवन के लिये आहार नितान्त आवश्यक है। कुछ विशिष्ट योगियों एवं साधुओं को छोड़कर सामान्य प्राणी बिना आहार के अधिक दिनों तक नहीं जीवित रह सकता। धरती पर जन्म लेने के साथ ही आहार का क्रम शुरू हो जाता है। इस प्रकार आहार हमारा पोषण तत्व है जिसकी आवश्यकता भूख के रूप में अनुभूत होती है। फलाहार, जलाहार, दुग्धाहार, रसाहार, और अन्नाहार आदि अनेक रसों से हमारी पुष्टि होती है।

सामान्य प्राणी के लिये सभी प्रकार के आहारों की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिये स्वास्थ्य विज्ञान में सबको मिलाकर एक अनुपात में संतुलित आहार की व्यवस्था की गई है। शरीर एवं मन मस्तिष्क को पूर्ण रूप से स्वस्थ एवं क्रियाशील रखने के लिए सभी तरह के पदार्थों को आहार में सम्मिलित किया गया है। यदि प्राणी इस सिद्धान्त को पूरी तरह समझकर आहार ग्रहण करे तो वह स्वस्थ, शक्तिशाली एवं दीर्घजीवी होगा।

संस्कृत में एक उक्ति प्रचलित है–

आहारे व्यवहारे त्यक्त लज्जा सुखी भवेत्।

अर्थात्–आहार और व्यवहार के मामले में लज्जा का परित्याग करने वाला सुखी होता है। इस उक्ति की स्पष्ट ध्वनि यही है कि भोक्ता को व्यवहार की तरह अपने आहार के मामले में सदैव सजग रहना चाहिए।

संकोच में पड़ कर बहुधा लोग दूसरों के साथ या पराये घर अधिक अथवा अत्यन्त कम भोजन कर लेते हैं। या स्वाद के लिए हानिकर पदार्थ खा जाते हैं जिसका परिणाम उन्हें भोगना पड़ता है।

अच्छे-अच्छे लोग जीभ के स्वाद के चक्कर में पड़ कर अपना अच्छा खासा स्वास्थ्य नष्ट कर दु:ख भोगते हुए असमय ही काल के गाल में चले जाते हैं। स्वाद के लालच से बचने का अभ्यास करना चाहिए। इस तथ्य को समझना चाहिए कि स्वाद का सम्वन्ध मात्र जिह्वा से है और पेट के भीतर पहुंचने पर यदि वह पौष्टिक और सुपाच्य नहीं है तो वेकार है। भोजन की मात्रा के बारे में भी इस तथ्य को नहीं भूलना चाहिए कि मात्रा से अधिक खा लेने पर स्वास्थ्य की हानि होती है।

पौष्टिक से पौष्टिक आहार अनावश्यक रूप में लेने से हानिकारक होता है। अत: भोजन का पहला सिद्धान्त है कि जब तक भूख न लगे कुछ भी नहीं खाना चाहिए। अनिच्छा से किया गया भोजन पचता ही नहीं और अनेक रोगों का कारण वन जाता है। हमें यह भ्रम नहीं पालना चाहिए कि जैसे भी हो जीवित रहने के लिए कुछ न कुछ खा लेना चाहिए। जीवन के वदले यह आहार मृत्यु का कारण बन जाता है। कहा भी है–

अजिर्णे भोजनं विषं

मेरे परिचित एक अच्छे डाक्टर की ४८ वर्ष की अल्प आयु में मृत्यु हो गयी। उदर विकार के कारण वे अधिक दिनों तक नहीं जी सके।

दरअसल उनकी चाट खाने की बुरी लत पड़ गई थी और सस्ती के समय ५-७ रूपये का रोज चाट खा जाते थे। मेरे एक ग्रामीण भाई इतना भोजन करते थे कि एक दिन खाते-खाते ही मर गये।

आप स्वंय ऐसी अनेक घटनाओं से परिचित होंगे। अतः संक्षेप में ही उनकी चर्चा काफी है। यहां हम भोजन सम्बन्धी कुछ तथ्यपूर्ण जानकारी प्रस्तुत कर रहे हैं जिस पर हमें हमेशा ध्यान देना चाहिए —

संसार के किसी भी खाद्य पदार्थ में, यदि वह स्वच्छता से वनाया

गया है और ताजा है, उस में कोई विकृति नहीं है- जो कुछ विकृति है वह हमारे ग्रहण करने की क्षमता में है।

० ० ०

व्यक्ति को आहार के मामले में किसी प्रकार का परहेज नहीं करना चाहिए। बस मात्रा और समय का ध्यान रखना आवश्यक है।

१ ० ०

सात्विक आहार सर्वथा सुखदायक होता है अतः राजसी एवं तामसी भोजन से बचना चाहिए।

० ० ०

१२ वर्ष की आयु तक ४ बार २५ वर्ष तक ३ बार, ४० वर्ष तक २ बार इस के बाद दिन में एक बार आहार लेना उत्तम है।

० ० ०

दिन के भोजन की अपेक्षा शाम का भोजन हल्का होना चाहिए।

० ० ०

अन्न से कम से कम दूनी मात्रा में साग, भांजी और जितना हो सके फल खाना लाभ कर है।

० ० ०

शुद्धता से तैयार किया हुआ भोजन शान्त एवं स्वच्छ स्थान पर बैठ कर ईश्वर को समर्पित करते हुए यह मानकर ग्रहण करना चाहिये कि मैं अत्यन्त ही पौष्टिक एवं स्वाद युक्त भोजन कर रहा हूं।

० ० ०

गले पदार्थों के साथ ठोस आहार को सान कर अथवा पीते हुए लेना अनुचित है क्योंकि इससे ग्रास को चबाने का मौका नहीं मिलता जिससे आहार में पर्याप्त लार न मिलने से उपयुक्त पाचन नहीं हो पाता। क्योंकि आंत को दाँत नहीं होते। अतः छोटे–२ ग्रास के रूप में भोजन को पूरी तरह चबाकर ग्रहण करना चाहिए।

० ० ०

भोजन का आरम्भ अदरख और नमक; चटनी अथवा प्रथम ग्रास

के साथ हरी मिर्च ग्रहण करना श्रेयष्कर है क्योंकि इससे उपयुक्त मात्रा लार का निकलना आरम्भ हो जाता है। इसलिए भोजन के बीच-बीच में भी अदरख अथवा मिर्च, चटनी आदि लेते रहना चाहिये।

o o o

चूंकि शरीर के पोषण के लिये विविध तत्त्वों की आवश्यकता होती है अतः आहार के संतुलन का सदा ध्यान रखना आवश्यक है।

o o o

कृत्रिम पदार्थों की अपेक्षा सामयिक फल, सब्जी तथा अन्न विशेष लाभप्रद है।

o o o

दोपहर के भोजन के आधे घण्टे बाद गन्ने का रस, नीबू मिश्रित जल अथवा सादा पानी तथा शाम के भोजन के पश्चात् दूध पीना सर्वथा हितकारी है। विशेष कर प्रातः काल मट्ठा, दोपहर में दही और सांय काल दूध का सेवन सर्वदा गुणकारी होता है।

o o o

कच्चा आहार सबसे अधिक पुष्टिकारक होता है क्योंकि उसमें सारे तत्त्व विद्यमान रहते हैं। उपले, लकड़ी, कोयला स्टोव और गैस की आंच में क्रमशः अधिकाधिक मात्रा में पोषण तत्त्व नष्ट हो जाते हैं।

o o o

गेहूं, चावल की ही तरह ज्वार बाजरा चना आदि मोटे अनाजों का नियमित सेवन करना श्रेयष्कर है।

o o o

भोजन में तेल, मसाले, लाल मिर्च, खटाई आदि का प्रयोग कम से कम होना चाहिए। भोजन को जिह्वा के अनुरूप स्वादिष्ट बनाने के लिए बहुधा उस के मूलतत्त्वों को नष्ट कर दिया जाता है। किसी भी

पदार्थ को दो भागों में बांट कर यदि आधे को मन्द आंच में उबाल कर

तथा शेष को मिर्च, मसाले देकर कड़ी आंच में देर तक जलाने के बाद यदि ग्रहण किया जाय तो उबला हुआ पदार्थ निःसन्देह अधिक स्वादिष्ट होगा। इसका मूल कारण है कि उसमें पदार्थ के प्राकृतिक तत्त्व नष्ट नहीं हो पाते; अतः स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद भी होते हैं।

० ० ०

तथ्यतः शरीर, अभ्यासों का दास है और मसालेदार एवं तली हुई चीजें खाते-खाते हमारा एक स्वभाव सा बन जाता है और हमेशा हम वही स्वाद खोजते हैं। किन्तु यदि उबली हुई चीजें खाने का अभ्यास डाला जाय तो कुछ ही दिनों में अभ्यास हो जायेगा। व्यवहार जगत में देखा गया है कि ऐसे आहार लेने वाले अधिक स्वस्थ एवं दीर्घजीवी होते हैं, उन्हें रोग कम होते हैं और काम-क्रोध आदि विकार भी कम सताते हैं।

० ० ०

संपन्न परिवारों को यह नहीं भूलना चाहिए कि अपने समीपस्थ इलाके में पैदा होने वाले अन्न, फल, शाक सब्जी आदि को सहज सुलभ मान कर त्यागना नहीं चाहिए। विदेशों अथवा दूरस्थ अंचलों से आयातित पदार्थ इन की अपेक्षा कम लाभदायक होते हैं। अतः स्वाद परिवर्तन के विचार से बाहरी पदार्थों का यदा-कदा सेवन करना चाहिए।

० ● ●

दवाओं के सम्बन्ध में भी इस तथ्य को समझना चाहिए। आयुर्वेद के महान प्रवर्तक चरक का भी यही सिद्धान्त है। आज भी ग्रामीण वैद्य अपने आस, पास की जड़ी बूटी से तमाम रोगों का उपचार करते हैं। दवा एवं भोजन की उपयुक्तता का ध्यान रखना चाहिए, उनके कीमती होने का नहीं।

● ● ●

वैज्ञानिक विधि से आहार में कलोरी, विटामिन प्रोटीन आदि का अनुपात देखा जाता है किन्तु योगी और साधु सन्त एक अन्न, कोई शाक अथवा दूध, जल लेकर पूर्ण स्वस्थ रहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि भोजन का सम्बन्ध भोक्ता की ग्राह्य क्षमता एवं मानसिक तैयारी से है।

° ° °

काशी के एक गंगा तटीय महात्मा को मैंने वर्षों से केवल लौकी पर स्वस्थ रहते देखा है। मैंने स्वयं वर्षों तक दिन में एक बार आधा किलो उबाली हुई सब्जी और आधा पाव आटे की रोटी खाकर समाज सेवा की है। चालीस दिनों तक केवल जल लेकर रहने का अभ्यास किया है।

° ° °

काया की शुद्धि के लिए लम्बे उपवास जरूरी हैं, किन्तु ऐसे उपवास के लिए योग्य निर्देशक की आवश्यकता होती है।

° ° °

मेरी नेक सलाह है कि सामान्य प्राणी, योगियों की नकल न कर सादा एवं सन्तुलित आहार लेते रहें।

° ° °

मादक द्रव्यों–शराब, भांग, गांजा, अफीम आदि को आहार का अंग बनाना भारी भूल होती है। नशीले पदार्थ स्वयं हानिकारक होते हैं और नशे की हालत में प्राणी इतना अधिक खा जाता है कि थोड़े ही समय में पाचन-शक्ति शिथिल पड़ जाती है।

° ° °

आहार में मठ्ठे का अधिकाधिक प्रयोग भी लाभप्रद देखा गया है। मट्ठा ताजा होना चाहिए।

° ° °

भोजन के बाद गुड़ का सेवन लाभदायक होता है किन्तु उसके

साथ जल नहीं लेना चाहिए।

• • •

समय के अनुसार यदि गाजर का नियमित सेवन किया जाय तो नयी स्फूर्ति एवं ताजगी प्राप्त होती है। खून बढ़ाने में गाजर सर्वथा सक्षम होता है।

• • •

भोजन के साथ चुकन्दर मूली, गाजर, धनियां, अदरख आदि का सलाद स्वादिष्ट एवं लाभप्रद होता है।

• • •

आहार के सिद्धान्त को समझने के लिए हमें इस तथ्य को नहीं भूलना चाहिएकि भोजन, शरीर रूपी गाड़ी को चलाने के लिये पेट रूपी की इंजन में ईंधन का कार्य करता है अतः इस ईंधन की क्षमता शक्ति एवं संतुलन का ध्यान रखना चाहिये।

• • •

भोजन के बाद दिन में सोने से कफ की वृद्धि होती है अतः दिन में नहीं सोना चाहिए।

• • •

भारत के अधिकांश स्थलों की जलवायु मांसाहार के अनुकूल नहीं है अतः भारतीय प्राणी को मांस लेना अनुपयुक्त है। मैंदानी भागों में मांस खाने वालों को देखा जाय तो चालीस वर्ष की उम्र पार करने के बाद ही उनका चेहरा विकृत होने लगता है। जबकि सात्विक आहार लेने वाले वृद्धावस्था में भी तेजवान दिखायी देते हैं।

• • •

अधिक जम्हाई, असमग्र निद्रा एवं आलस्य इस बात के लक्षण हैं कि सम्बद्ध व्यक्ति आहार के मामले में जागरूक नहीं है।

• • •

दो वार के भोजन या जलपान में कम से कम तीन घण्टे का अन्तर

रखना आवश्यक है। बुरी तरह खा लेने के बाद आदमी तृप्ति की अपेक्षा परेशानी का अनुभव करता है। अतः ऐसे व्यक्ति को तब तक भोजन नहीं लेना चाहिए, जब तक पिछला खाया हुआ आहार पच न जाय और पुनः खाने की इच्छा न हो।

० ० ०

पौष्टिक होते हुए भी बेमेल आहार को एक साथ लेने पर हानिकारक सिद्ध होता है। जैसे दूध के साथ नमक, प्याज के साथ टमाटर, खिचड़ी के साथ दूध, घी के साथ मधु आदि।

० ० ०

तले हुए खाद्य पदार्थों का सेवन यदा-कदा ही करना चाहिए। क्योंकि चिकनाहट के कारण मेदे को इन्हें पचाने में कठिनाई होती है। इसीलिए पूड़ी और पकवान दिन में एक बार ही लेना श्रेयष्कर है।

० ० ०

भोजन से आधे पेट को भरना चाहिए। चौथाई हिस्सा जल से पूरा करें और शेष चौथा हिस्सा वायु के लिए सुरक्षित रखना चाहिए।

० ० ०

भोजन करने के बाद बैठने से तोंद निकलती है, बायें करवट सोने से आयु तथा उत्तान सोने से बल बढ़ता है किन्तु दौड़ने से मृत्यु का भय बना रहता है।

० ० ०

दोपहर के भोजन के बाद बायें करवट कुछ समय तक विश्राम और शाम के भोजन के बाद कुछ देर तक टहलना लाभदायक है।

० ० ०

भोजन करते समय जल कम से कम लेना चाहिए। जल लेने का

उपयुक्त समय भोजन के आधे या एक घण्टे बाद का है। इससे पाचन क्रिया पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

० ० ०

भोजन इतना गर्म न हो कि वाष्प निकल रहा हो या अधिक ठंढा न हो कि गलता हो अर्थात् ताजा भोजन ठंडा करके खाना लाभदायक है।

० ० ०

कितनी ही भूख क्यों न लगी हो, कितनी ही शीघ्रता क्यों न हो जल्दी-जल्दी नहीं लेना चाहिए, क्यों कि आदमी पशुओं की भांति जुगाली नहीं करता। जल्दी-जल्दी में आदमी बे अन्दाज खा जाता है अतः आहार को धीमी गति से खूब चबा-चबा कर करना चाहिए ताकि आसानी से पच सके।

●

नासमझी ही दुःख है

यह एक वैदिक मंत्र है। जहाँ भी दुख है वहां कुछ न कुछ नासमझी अवश्य है। आत्मा की अमरता को भूलकर हम किसी प्राणी की मृत्यु पर दुःखी होतें हैं। बहुत पुरानी घटना है, एक राजा अपने एकलौते पुत्र की मृत्यु पर दुःखी था। सारे राज्य में शोक की लहर छा गयी। दरबार और राजमहल की ओर किसीका ध्यान न होने के कारण सारी व्यवस्था अस्तव्यस्य होने लगी।

इसी बीच एक महात्मा जी आये। दुःखी होने के कारण कोई उन्हें सम्मान नहीं दे सका। महात्मा जी को अपने सम्मान की भूख नहीं थी। किन्तु सबको दुःखी देखकर उन्हें आश्चर्य अवश्य हुआ। भगवान का नाम लेकर उन्होंने जोर का ठहाका लगाया और राजा को उसके कर्तव्य की याद दिलाई। लेकिन राजा की आंखें इतने पर भी नहीं खुलीं। उसे महात्मा के हंसने का बल्कि रंज ही हुआ। उसने अपने ऊपर हुये एक वज्रपात पर हंसने के कारण महात्मा को फटकारना शुरू किया। राजमद में आकर उसने महात्मा को तत्काल राज्य के बाहर निकल जाने को कहा।

लेकिन महात्मा की मुद्रा में कोई परिवर्तन नहीं आया। उन्होंने सहज भाव से कहा, राजन इसमें तुम्हारा दोष नहीं। तुमने हमारा सदा सम्मान किया है और आगे भी करोगे, किन्तु सम्प्रति मोह के वश में होने के कारण तुम अपने कर्तव्य भूल चुके हो। जब तुम्हें अपने एक पुत्र के मर जाने के कारण अपनी सारी प्रजा रूपी सन्तानों के कष्ट

का ध्यान नहीं है तो मेरी बातों पर तुम कब ध्यान दोगे। फिर भी

तुम राजा हो और तुम्हारी आज्ञा मानकर मैं यहाँ से चला जा रहा हूँ। अगर ईश्वर की इच्छा हुई तो १५ दिन बाद मैं पुनः इसी समय तुम्हारे सम्मुख आऊंगा। सम्भवतः तब तुम मेरी बातें ध्यानपूर्वक सुनोगे।

महात्मा की विवेकपूर्ण वाणी राजा के हृदय में तत्काल कोई प्रभाव नहीं दिखा सकी और महात्मा भगवान का नाम रटते चले गये। किन्तु घंटे भर बाद ही राजा के मन में पुत्र शोक के साथ ही एक और दुःख उभरा। दरबारियों को भेजकर उन्होंने महात्मा जी को तत्काल खोज लाने का आदेश दिया। महात्मा का सम्मान नहीं किया, उनकी बात नहीं मानी, उन्हें बैठाया नहीं, उनके आहार-विश्राम का कोई प्रबन्ध नहीं किया बल्कि इसके बदले उन्हें राज्य से निकाल दिया। आदि तमाम बातें राजा के हृदय में शूल की तरह चुभने लगीं। इसी चिंतन मंथन में शाम हो गयी। इधर जब दरबारियों ने लौट कर बताया कि महात्मा जी कहीं नहीं मिले तो राजा की चिन्ता चौगुनी हो गयी और काफी हद तक पुत्र शोक भूल गये। राजा को महात्मा के कहे वाक्य का ख्याल आने लगा। दूसरे ही दिन से उन्होंने मंत्रियों अधिका-रियों से राज-काज सभालने के लिए हुक्म दे डाला किन्तु १५ दिनों के बीच वे स्वयं कोई काम नहीं कर सके। कुछ क्षण पुत्र शोक और कुछ क्षण महात्मा के अनादर की चिंता में पड़े रहे।

पन्द्रहवें दिन प्रातः ही महात्मा जी पधारे। राजा दौड़कर उनके चरणों में गिर पड़ा और सम्मान पूर्वक उच्चासन पर बैठाया, किन्तु फिर भी अन्तर्मनमें पुत्र शोक की आग दहकने के कारण वह महात्मा को पूर्ण सम्मान नहीं दे सका। अपनी इस असमर्थता के लिए उसने महात्मा से क्षमा याचना की। महात्मा जी हंसने लगे। उन्होंने संयत स्वर में कहा, असमर्थता नहीं, इसे नासमझी कहते हैं। आदमी अपनी नासमझी

के कारण इसी प्रकार ढेर सारे दुःखों को लाद कर दुःखी रहता है।

चूँकि तुम एक राजा हो, तुम्हारे ऊपर प्रजा का भार है अतः मेरा कर्तव्य है कि तुम्हारी नासमझी को दूर करने का यत्न करूँ। लेकिन हम यत्न ही कर सकते हैं। उसे दूर केवल तुम ही कर सकते हो। इसके बाद महात्मा ने अपने तप बल से मृत राजकुमार की आत्मा को प्रकट किया। उसने जन्म जन्मान्तर की सारी घटनाओं का विवेचन किया। उसने बताया कि वह पूर्व जन्म में जब हिरन की योनि में पैदा हुआ था, इसी राजा ने उसके जवान बेटे को शिकार खेलते समय मार डाला था। उसी का बदला लेने के लिए वह राजा का बेटा बनकर पैदा हुआ और उभरती उमर में मर कर उसने राजा से अपना बदला चुका लिया। इतना सुनकर महात्मा के चरणों पर गिरकर राजा ने अपनी नासमझी के लिए क्षमा याचना की और वे अपना सारा दुःख भूल गये।

स्वप्न

नासमझी का सबसे स्पष्ट उदाहरण हमारे स्वप्न हैं। रात्रि के शान्त प्रहर में पलंग पर सोये सोये जब हम देखते है कि अमुक आदमी मुझे दौड़ा रहा है। उसके हाथ में घातक हथियार है। वह बहुत हट्टा कट्टा है और मेरे बहुत समीप आ गया है। लेकिन मैं भागने में असमर्थ हूँ। लाख प्रयास करने के बावजूद मेरे पांव आगे नहीं बढ़ रहे हैं। उससे बचने के लिए मैं इधर उधर लुकने छिपने का भी यत्न करता हूँ किन्तु सफलता नहीं मिलती। और पास आकर मेरी गर्दन पर वार कर देता है। खून की धार वह निकली, मैं मर जाता हूँ। फिर तो मेरे दुःख की सीमा नहीं रहती, मैं बहुत दुःखी होता हूँ। कुछ क्षणों का वह दुःख मुझे विकल बना देता है। किन्तु इसी बीच हमारी आंख खुल जाती है। फिर नासमझी पर हमें कष्ट होता है।

इसी नासमझी का नाम संसार है। ससार को ही सत्य मानकर हम कभी दुःख के सागर में डुभ चुभ करते हैं, और कभी आनन्द के पालने पर झूला झूलते हैं। किन्तु विवेकवान और ज्ञानी पुरुष जो जीवन के रहस्य को बखूबी समझता है संसार में रहकर भी उसकी उसमें आसक्ति नहीं होती। वह दुःख सुख दोनों में सम रहता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यही उपदेश दिया। हमारे समस्त धर्म ग्रन्थ यही बतलाते हैं, किन्तु जब तक आदमी इस तथ्य को नहीं पकड़ पाता वह भटकता रहता है। और अपनी नासमझी के कारण दुःखों के जाल में फंसकर अपने बहुमूल्य जीवन को नष्ट कर देता है।

योग

आदमी को इसी नासमझी की ओर आगाह कर उसे संसार में स्वस्थ एवं संयमयुक्त रहने के साथ ही मोक्ष की ओर अग्रसर करने का मार्ग ही योग है। योग जीव और ब्रह्म को मिलाने का सेतु है। इसकी परिणति है दोनों का एकाकार हो जाना। योग साधन में कहीं कोई कमी रही तो जीव अन्य जन्मों तक भटकने के लिए मजबूर होगा। कपिलोपदेश में भगवान ने भक्तियोग की व्याख्या करते हुये स्पष्ट किया है कि :—

ज्ञान वैराग्य युक्तेन भक्ति योगेन यौगिनः।
क्षेमाय पादमूलं में प्रविशन्त्य कुतोभयम् ॥

योगी लोग अपने कल्याण के लिए ज्ञान वैराग्ययुक्त हो भक्तियोग द्वारा मेरे सर्वथा निर्भय पादमूल में प्रवेश करते हैं।

साधना का आरम्भ

योग शास्त्र में साधना का आरम्भ शारीरिक और मानसिक शुद्धि से करने को कहा गया है। यह नीव जितनी मजबूत होगी, योग साधना

का महत्व उतना ही मजबूत और स्थिर होगा । इसीलिए योग के अनेक

अभ्यास शारीरिक शुद्धि के लिये बताये गये हैं । ऐसे पुरुष जो भौतिक-वाद को ही सत्य मान बैठते हैं, उन्हें योगाभ्यास द्वारा स्वास्थ्य लाभ तो करना ही चाहिए । संसार में अधिक समय तक स्वस्थ एवं प्रसन्न रहने की आकाँक्षा रखने वाले संसारी व्यक्ति के लिए योगाभ्यास और जरूरी है ।

वाह्य शुद्धि से अधिक आन्तरिक शुद्धि आवश्यक है । जैसे गन्दे अथवा लहरते जल में प्रतिबिंब नहीं दीख पड़ता ठीक वैसें ही मन की अशुद्धि से हमें उसमें अपना प्रतिविम्व कांपता या धुंधला दिखलायी पड़ता है । यह जो प्रतिविम्व है वही ईश्वर है जिसका सूक्ष्म शरीर से मिलन कराने पर हीं ब्रह्मानन्द का सुख मिलता है । वही मोक्ष का साधन है । अतः नासमझी का परित्याग कर सुख दुःख की ससारी परिधि से ऊपर उठकर शरीर और मन की शुद्धि कर हम योग के माध्यम से मोक्ष की प्राप्ति कर सकते हैं ।

आयु की क्षीणता, शारीरिक अस्वस्थता, मानसिक उलझने, वैज्ञानिक विध्वंसों एवं मशीनी तथा पारिवारिक झंझटों में पिसता हुआ आदमी, योग को कठिन के साथ ही इस युग में निरर्थक कराकर दे चंचल, चिन्तित, स्खलित और भ्रष्ट होकर भी यदि वह सुखशान्ति की आकांक्षा रखता है तो यह उसका भ्रम है ।

एक सज्जन ने पूछा, अगर आप आशीर्वाद दें दे तो मैं योगी बन जाऊँ । मैंने सहज भाव से कहा, मेरे आशीर्वाद से किसी का पेट नहीं भर सकता । अगर ऐसा होता तो साधु-सन्त भिक्षाटन नहीं करते–जैसे राम के खाने से रहीम सन्तुष्ट नहीं होता वैसे ही किसी का योग दूसरे के काम नहीं आता । जैसे आपने श्रम करके एम०ए० की डिग्री हासिल की यदि उससे कोई दूसरा नौकरी पाने का प्रयास करे तो जुर्म होता है । उसी प्रकार दूसरे की तपस्या का आपको फल नहीं मिल सकता ।

आप योगाभ्यास कर मोक्षबाब में प्राप्त करेंगे, इसके पूर्व ही इसके माध्यम से आप उत्तम स्वास्थ्य, संयम, दीर्घायु, आत्मबल, सुखशांति, आदि तमाम अच्छाइयों का संचय कर सकते हैं। 'योग' ये सारी अच्छाइयां आपके नाम पार्सल नहीं करेगा बल्कि आपके भीतर अवस्थित तमाम गुणों का इससे जागरण होगा। अपने भीतर मानवीय मूल्यों की स्थापना किये बिना हम आदमी नहीं बन सकते। और जब तक आदमी आदमी नहीं हो जाता योग साधना ध्यान, तप, संयम आदि गुणों की ओर आकृष्ट नहीं होगा।

स्वर-साधना

मानव जीवन में स्वर साधना एक अनुपम उपलब्धि है जिसके बल पर प्राणी भौतिक जीवन में सब कुछ प्राप्त करने के साथ मुक्ति तक पहुँच सकता है। रामायण एवं महाभारत कालीन तमाम योद्धाओं ने स्वर साधना के बल पर वह चमत्कारिक शक्ति प्राप्त की थी जिसके बल पर उन्होंने आग पानी और विष बुझे बाणों की वर्षा के बीच घिरकर भी दुश्मनों पर विजय प्राप्त की और अपना बाल बांका भी नहीं होने दिया। कहते हैं भगवान श्रीराम के परम भक्त महाबली हनुमान ने स्वर साधना के ही बल पर आकाश में उड़कर समुद्र लंघन कर सीता जी की खोज की और सोने की लंका को जलाकर राख कर दिया।

महान साधक स्वर्गीय श्यामाचरण लाहिड़ी के सम्बन्ध में एक अजीब घटना मुझे बचपन में पढ़ने को मिली थी। अपने आरम्भिक जीवन में देहरादून के निकट एक पहाड़ी पर टहल रहे थे। उन्होंने देखा कि एक पतला दुबला किन्तु शीशे की तरह पारदर्शी व्यक्ति पहाडी से हवा की तरह उतरता हुआ आया। जाड़े का सवेरा था। ठंडक तेज थी और ओस बर्फ के झाग की तरह घासों-झाड़ियों पर लदी हुई थी। लोग तमाम कपड़ों-कम्बलों में लिपटे वहीं इर्द-गिर्द चाय पी रहे थे।

वह व्यक्ति इतनी ठंडक में भी केवल कोपीन पहने दमक रहा था और उस पर शीत का कोई प्रभाव नहीं था। वह व्यक्ति बिना कुछ बोले चाय की दूकान तक पहुंचकर खड़ा हो गया। दूकानदार ने उसे चाय दी और वह एक ही सांस में सारी चाय पीकर उलटे पांव चला गया। जब वह चाय पी रहा था शीशे की तरह उसके गले और पेट में चाय उतरती हुई दिखाई दे रही थी।

लाहिड़ी जी को चाय वालों ने बताया कि ये सैकड़ों वर्षों से इसी पहाड़ी की गुफा में रहते हैं और कभी कदा यहां आकर चाय पी जाते हैं। लाहिड़ी जी चूंकि स्वयं साधक थे अतः उनके कदमों का निशान देखते हुए गुफा तक गये। इन्हें देखकर जब योगी ने इनका नाम लेकर पुकारा और भीतर आने को कहा तो ये आश्चर्य में पड़ गये। किन्तु योगी ने समझाया कि स्वर साधना के बल पर सब कुछ ज्ञात हो जाता है। इसके बाद उन्होंने स्वर क्रिया के अनेक चमत्कार दिखाये। लाहिड़ी जी ने लिखा है कि वे सिद्ध स्वर साधक थे। वर्षों से वे सिर्फ वायु पीकर रहते थे और स्वर विज्ञान के अच्छे ज्ञाता थे। वे श्वांस भरकर अपनी गुफा में जमीन से ऊपर उठ जाते थे। इसी स्वर विज्ञान की साधना कर साधक देश विदेश की यात्रा करते हैं और हर प्रकार के प्रश्नों का समाधान किया करते हैं।

पुस्तक में पढ़ी इस घटना ने मुझे इतना प्रभावित किया कि मैं योगासनों के साथ ही स्वर साधना का भी अभ्यास करने लगा। कुछ ही वर्षों में मेरा इतना अभ्यास हो गया कि प्रति वर्ष ४० दिनों तक केवल जल लेकर मैं व्रत करता हूँ और भोर में वायु सेवन कर वह शक्ति अर्जित कर लेता हूँ जिससे शरीर को पूरी शक्ति मिल जाती है।

अनेक प्रयास के बावजूद मुझे अभी तक ऐसा साधक नहीं मिल सका जिससे कुछ विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकूँ। इसके बावजूद काशी में रहकर गंगा तट पर पहुंचकर मैंने अपना अभ्यास जारी रखा और हनुमान जी की कृपा से कुछ सफलता भी प्राप्त हुई।

योग द्वारा रोग निवारण करने के क्षेत्र में मैंने स्वर का भी सहारा लिया और इससे अनेक लोगों को लाभ पहुँचा। मैंने अनुभव किया कि कठिन से कठिन रोग योगासनों एवं प्राणायाम से दूर हो जाते हैं जिनके प्रभाव से प्राणी निराश हो चुका रहता है।

स्वर विज्ञान पर अधिक ग्रंथ नहीं मिलते। एक मात्र 'शिव स्वरोदय' ही उपलब्ध है जिसमें स्वर विज्ञान के आदि अध्येता भगवान शिव ने माता पार्वती से स्वर साधना की उपलब्धियों के बारे में विस्तार से बताया है और कहा है कि इसके बल पर असंभव कार्य भी किये जा सकते हैं।

स्वर

स्वर का तात्पर्य श्वांस से है। भोजन और जल के अभाव में तो प्राणी कुछ दिनों तक जीवित रह लेगा किन्तु सांस के बिना वह तत्काल समाप्त हो जायेगा। इसके बावजूद सामान्य प्राणी स्वर के महत्व को नहीं समझता। वायु तत्व की महत्ता को आज का विज्ञान भी स्वीकार करता है इसी लिए बड़े बड़े नगरों को वायु प्रदूषण से बचने के लिए तमाम उपाय किए जा रहे हैं। शुद्ध वायु का सेवन जितना जरूरी है उससे भी अधिक जरूरी है वायु ग्रहण करने की कुशलता। वायु ग्रहण करने की इसी कुशलता का नाम स्वर साधना है जिसका अभ्यास कर प्राणी सुखी रह सकता है।

स्वर विज्ञान के अनुसार बायें छिद्र से श्वास लेने को चन्द्र स्वर और दाहिने छिद्र से श्वास लेने को सूर्य स्वर कहते हैं। इस प्रकार चंद्र स्वर शीतलता का प्रतीक है और ठीक उसी प्रकार सूर्य स्वर से उष्णता का संचयन होता है। सामान्य रूप से भोजन के बाद सूर्य स्वर की आवश्यकता होती है इसी लिए स्वास्थ्य विज्ञान में भोजनोपरान्त बायें करवट सोने का विधान है। उदर विकार, मंदाग्नि, अनिद्रा, वायु-विकार आदि में सूर्य स्वर का अधिक संचालन लाभदायक होता है।

इसी प्रकार अधिक भूख लगने, गर्मी, घबराहट, चक्कर आदि के शमनार्थ चन्द्र स्वर चलाया जा सकता है। 'वैसे स्वस्थ व्यक्ति का स्वर प्राकृतिक रूप से चलता बदलता रहता है किन्तु व्याधियों से आक्रांत व्यक्ति का स्वर संयमित नहीं रह जाता। अतः उसे विरोधी अर्थात् मन्द स्वर को अधिक समय तक चलाने का प्रयास करना चाहिए।

प्राणायाम

प्राणायाम का विधान हमारे ऋषियों ने इसीलिए बनाया था। स्वर साधना में दक्षता प्राप्त करना हर प्राणी के लिए सम्भव नहीं है किन्तु वह प्राणायाम करके अपनी स्वर प्रक्रिया को ठीक रखकर सदा स्वस्थ एवं प्रसन्न रह सकता है।

प्राणायाम की तीनों स्थितियों का ज्ञान होना आवश्यक है जिसे पूरक, कुम्भक एवं रेचक कहते हैं। पूरक–सांस खींचना, कुम्भक–सांस रोकना और रेचक–सांस छोड़ना। प्राणायाम विधान के अनुसार इनका अनुपात २–८–४ का होना चाहिए। अर्थात् यदि १० सेकेंड में सांस खींचे तो ४० सेकेन्ड तक रोकें और २० सेकेन्ड में बाहर निकाल दें।

प्रातःकाल नित्य कर्म एवं स्नानादि करके शुद्ध वातावरण में सूर्योदय के पूर्व यदि पूर्व दिशा में बैठकर नियमित प्राणायाम किया जाय तो प्राणी अपार शक्ति प्राप्त कर स्वस्थ एव प्रसन्न रह सकता है। आरम्भ में ५ मिनट तक और अभ्यास के बाद १० मिनट तक प्राणायाम पर्याप्त होगा।

प्राणायाम से किसी प्रकार की हानि नहीं होती। मेरा अपना अनुभव है कि यदि प्राणी इसी में उपासना भी जोड़ दे अर्थात प्राणायाम काल में ईश्वर या अपने ईष्टदेव का ध्यान भी करता रहे अथवा गायत्री या किसी अन्य मंत्र के सहारे प्राणायाम करता रहे तो शीघ्र ही लाभ होगा।

उपवास

मानव शरीर को स्वस्थ रखने के लिए आहार जितना जरूरी है उपवास उससे कम जरूरी नहीं। तथ्यतः आहार विधि का उचित पालन न होने से हम सदैव सतर्क रहकर भोजन नहीं ग्रहण कर पाते। मानसिक स्थिति, प्रकृति एवं शरीर के क्रिया कलाप भोजन पचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

खाद्य पदार्थ नियमित ग्रहण करते करते पाचन संस्थान एवं अन्य अंग-उपांग जब थक जाते हैं या भोजन की मात्रा पाचन शक्ति से अधिक हो जाती है तो भोजन का पचना संभव नहीं हो पाता। इससे तमाम विकार उत्पन्न होकर हमारे शरीर को दूषित करते हैं और अनेक प्रकार के रोगों का जन्म होता है।

ऐसी स्थिति में लोग दवा-दारू का सहारा लेकर जबरी भोजन पचाने और ग्रहण करने का यत्न करते हैं जो और भी हानिकारक होता है। हमें इस तथ्य को नहीं भूलना चाहिए कि शरीर की प्राकृतिक क्रियाओं मे व्यवधान पैदा करने की अपेक्षा यदि उपवास करके उसे आराम दिया जाय तो पाचन क्रिया की गति स्वाभाविक बनी रहेगी और किसी प्रकार की दवायें लेने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में उपवास का विधान है। महात्मा गांधी, लालबहादुर शास्त्री जैसे अनेक प्रवुद्ध लोगों ने सप्ताह में एक दिन उपवास रखकर अपने स्वास्थ्य को ठीक रखा है।

ऐसा अनुमान किया गया है कि स्वस्थ प्राणी यदि सप्ताह में किसी एक दिन नियमित रूप से उपवास करे तो उसे अपने जीवन में रोगों की संभावना नहीं रह जाती।

बुखार आने पर उपवास करते रहने से बिना किसी अन्य दवा के रोगी स्वस्थ हो जाता है। उदर विकार में भी उपवास का महत्व है। जीर्ण ज्वर जब किसी भी दवा से ठीक न हो तो उपवास करना ही एक मात्र उपाय है।

चार-पाँच दिनों तक के उपवास में तो नहीं किन्तु अधिक दिनों का उपवास रखना हो तो किसी योग्य चिकित्सक से परामर्श करना चाहिए।

जल सेवन

उपवास के समय शान्त चित्त रहकर केवल जल ग्रहण करना चाहिए। नित्य भोजन ग्रहण करने के समय पर जब भूख की अनुभूति हो तो उस शमय जल पी लेने से भूख शान्त हो जाती है। कुछ लोग उपवास के समय में नीबू, संतरा आदि पानी में लेने की राय देते हैं। किन्तु यह जलाहार नहीं हुआ। पानी में कुछ भी मिला देने से रसाहार हो जाता है और उसका पाचन क्रिया पर कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता है। इसलिए ऐसे समय में केवल जल का सेवन श्रेयष्कर है।

जैसा कि हमने ऊपर कहा है अपने दैनिक भोजन में बहुधा हम ऐसे अनेक तत्वों को अधिक या न्यून मात्रा में ग्रहण करते रहते हैं जिसकी हमें सही-सही जानकारी नहीं रहती है। उपवास हमारे संतुलन को ठीक करने में सहायक होता है। उपवास से हमारा वजन कुछ कम होता है। किन्तु स्फूर्ति, प्रसन्नता और चुस्ती में वृद्धि होती है। मोटापा भी अपने में एक रोग है। अतः नियमित साप्ताहिक उपवास से दूर किया जा सकता है।

अधिकांश बीमारियां खान-पान की गड़बड़ी एवं उदर विकार के कारण होती हैं। अतः उपवास इसमें विशेष सहायक सिद्ध होगा। मन शुद्धि, रक्तशुद्धि कर उपवास हमें दीर्घ जीवन तेज एवं बल प्रदान करता है। मैंने अनेक रोगों पर उपवास का प्रयोग कराया है। जिससे आश्चर्यजनक लाभ हुआ है।

पतले दस्त, बुखार, उदरशूल आदि रोगों में उपवास सद्यः लाभ प्रद होता है। अतः उसमें देर नहीं करनी चाहिए। सिर दर्द, अपच आदि होते ही उपवास कर लेना चाहिए। अर्थात् शरीर में जब भी कोई गड़बड़ी हो, उसे ठीक करने के लिए उपवास सहज उपचार है।

उपवास के समय यदि प्यास न भी लगे तो कम से कम तीन-चार किलो जल पीना अनिवार्य है। यह जल एक साथ न लेकर घंटे डेढ़ घंटे के अन्तर पर लेना चाहिये। लम्बे उपवास में आराम बहुत जरूरी है।

नौरात्र के अवसर पर मैंने बिना जल लिये ही नव दिन तक व्रत किया। अपने अनेक डाक्टर, शुभचिन्तकों की राय न मानकर मैं इस निर्जल व्रत को अनेक वर्षों से करता रहा हूँ। किन्तु मुझे कोई परेशानी नहीं हुई। तीसरे दिन से शरीर को खाने-पीने की किसी प्रकार की आवश्यकता की अनुभूति नहीं होती। मन बहुत ही प्रसन्न एवं शरीर निर्मल तथा हल्का प्रतीत होता है। पूजा ध्यान में खूब मन लगता है।

इसके साथ ही चालीस दिनों तक वर्ष में एक बार में केवल जल लेकर उपवास करता हूँ। और इन दिनों के आनन्द, निर्मलता एवं हार्दिक उल्लास का अद्भुत सुख प्राप्त होता है। जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

उपवास करने की ही भाँति उपवास तोड़ने के विषय में भी पूरी तरह सतर्क रहना आवश्यक है। लम्बे उपवासों को तोड़ने में की जाने वाली असावधानी में कभी-कभी खतरा हो जाता है। लम्बे उपवासों

को हल्का रसाहार लेकर तोड़ना चाहिए। संतरे का रस लेकर लम्वे उपवास को तोड़ने से अच्छा होता है क्योंकि सुपाच्य होने के कारण संतरा शरीर को तत्काल शक्ति प्रदान करता है। कम से कम लम्वे उपवास के बाद तीन-चार दिन के रसाहार के बाद कम से कम तीन दिन तक मुलायम फल ताजी सब्जी आदि पर निर्भर रहना चाहिये और तब धीरे-धीरे पौष्टिक आहार लेना चाहिए।

लम्बे उपवास के पश्चात् शरीर को प्रोटीन, वसा तथा प्राकृतिक शर्करा की आवश्यकता प्रचुर मात्रा में होती है। किन्तु पाचन-संस्थान जब नियमित रूप से विधिवत् कार्य करने लगे तभी प्रोटीन, बसायुक्त शरीर बांधने वाला आहार शुरू करना उचित है। पाचन पर अधिक दबाव न डालते हुए शरीर को पुष्ट बनाने का कार्य करना चाहिये। जल्दबाजी के कारण अपचन पैदा न हो जाय, इतनी सावधानी रखी जाय।

कुछ महत्वपूर्ण बातें

उपवास करने से पूर्व व्यक्ति को मानसिक रूप से तैयारी करनी चाहिए और इस तथ्य को समझना चाहिए कि हम दीर्घ जीवन एवं उत्तम स्वास्थ्य के लिए एक अच्छा कार्य आरम्भ करने जा रहे हैं।

× × ×

लम्वे उपवास बिना अपेक्षित साधन के नहीं करना चाहिए। उपवास करने का हवादार, एकान्त एवं स्वच्छ स्थान होना चाहिए। उपवास के परिपालन हेतु स्वयं जानकारी न हो तो योग्य निर्देशक का होना जरूरी है। इसी प्रकार उपवास के दौरान अच्छे सेवक की आवश्यकता होती है जो उपवास करने वाले की पूरी तरह सेवा कर सके।

× × ×

रोग मुक्ति हेतु किये जाने वाले लम्वे उपवास विना निर्देशक के नहीं करना चाहिए।

उपवास के दौरान यदि हाथ-पांव ठंडा होने लगे तो गर्म पानी के

थैले से सेंकना और कपड़े से ढकना चाहिए।

× × ×

ऐसी स्थिति में कोई श्रम या अनर्थक चिन्ता नहीं करनी चाहिए। सत्साहित्य का अध्ययन अथवा श्रवण तथा पवित्र विचारों में मन को लगाना चाहिए।

× × ×

स्वस्थ व्यक्ति उपवास के दौरान आसन कर सकता है, टहल सकता है। वजन घटाने के लिए ऐसी स्थिति में तेज चलना और उछलना, कूदना तथा व्यायाम करना लाभदायक होता है। ऐसा करने से मोटापा तेजी से कम होता है।

× × ×

उपवास के दिनों बहुधा लोग यह मान कर शौच नहीं जाते कि जब वे कुछ खा-पी नहीं रहे हैं तो शौच क्यों जायें। ऐसा करना उचित नहीं है क्योंकि निरन्तर जल लेते रहने से संचित मल बाहर निकलता है। जीर्ण ज्वर में मल आंतों में चिपका रहता है अतः शौच जाना आवश्यक है।

× × ×

मल के बाहर निकले बिना उत्तम स्वास्थ्य नहीं बन सकता अतः निर्देशानुसार एनिमा भी लेना चाहिए।

× × ×

रोगी व्यक्ति को पूरी तरह भूख लगने पर ही उपवास तोड़ना उचित है। भूख न जगने का मतलब है कि पेट में मल संचित है।

• • •

मल साफ होने का प्रमाण है जिह्वा का साफ हो जाना। जिह्वा पर लाली आ जाये तो उसे साफ समझना चाहिए। मुख में

चिपचिपाहट और सफेदी रहे तो समझना चाहिए कि अभी पेट में
गन्दगी है।

° • °

उपवास के आरम्भ में लार का स्वाद कड़वा, मध्य में फीका और अन्त में लार का स्वाद मीठा लगने लगता है। ऐसे समय में पानी भी मीठा प्रतीत होता है।

• ° •

उपवास सिद्धि के लक्षण देखे जाते हैं—

१. जिह्वा की सफेदी दूर होकर उसपर लाली आना।
२. श्वास की दुर्गन्ध समाप्त होना।
३. सच्ची भूख का अनुभव होना।
४. शरीर का तापमान स्थिर हो जाना।
५. नाड़ी की गति नियमित हो जाना।
६. आँखें स्वच्छ एवं तेजयुक्त होना।
७. पेशाब का रंग साफ हो जाना तथा
८. त्वचा का मुलायम एवं चिकना हो जाना।

• ° °

कभी कभी पोषक तत्त्वों की कमी के कारण रोगी में उक्त ८ लक्षणों में से केवल एक लक्षण ही दिखाई पड़ता है अर्थात् रोगी को जोरों की भूख लगती है। ऐसे रोगी को तत्काल उपवास तोड़ देना चाहिए किन्तु पूर्ण स्वस्थ होने के लिए कुछ दिन बाद पुनः उपवास करना चाहिए।

° ° °

मेरी राय में हर व्यक्ति को लम्बे उपवास नहीं करना चाहिए। उचित यही होगा कि अधिक दिनों के उपवास की आवश्यकता होनेपर

भी ३-५-७-१० दिनों का उपवास वर्ष में दो-तीन बार करके कठिन रोगों को दूर किया जा सकता है।

° ° °

दैनिक आहार में यदि फलाहार, रसाहार आदि का समुचित सेवन किया जाय तो हफ्ते में एक दिन का उपवास ही पर्याप्त होता है।

° ° °

शरीर में आरोग्य स्थिर रखने के लिए प्राकृतिक सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए।

● ● ●

अपनी पुरानी गलतियों को दूर करने के लिए जब उपवास किया जाता है तो पुनः उन्हीं भूलों को दुहराने की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है।

●

हृदय रोग से मुक्ति

स्वास्थ्य विज्ञान के अनुसार शरीर की धमनियों और रगों द्वारा प्रत्येक अंग में रक्त पहुंचा कर उसे जीवनी शक्ति प्रदान करना हृदय का कार्य है। रक्त ही हर अंग का पोषण करता है। इसलिए मृत्यु के समय जब हृदय गति रुक जाती है, रक्त का संचार बन्द हो जाता है और प्राण शरीर छोड़ देत हैं। स्पष्ट है कि स्वास्थ्य को स्थिरता शरीर में सुचारु रूप से रक्त संचालन पर ही निर्भर करती है। इस प्रकार इस तत्व को हमें भली-भांति समझ लेना चाहिये कि हृदयगति जबतक स्वाभाविक रूप से चलती रहेगी, रक्त का प्रवाह भी नियमित बना रहेगा और प्राणी स्वस्थ एवं प्रसन्न दिखायी देगा।

आज की वैज्ञानिक प्रगति में जहाँ हम चांद तारों पर पहुंच रहे हैं—वहीं इस धरती पर दूषित वायु, हानिकारक आहार और कृत्रिम वातावरण में रहने के लिए मजबूर हैं। आधुनिकता की दौड़ में हम पांव में जूते से लेकर सिर की टोपी तक जो कुछ भी धारण करते हैं, उसमें अस्सी प्रतिशत वस्तुएँ शरीर के लिए हानिकारक हैं।

ऐसी स्थिति में स्वस्थ रहने के लिए हमें अपने आहार-विहार पर विचार करना होगा। उपचार अथवा आसन, प्राणायाम आदि की शरण में जाकर हम अपेक्षित लाभ नहीं प्राप्त कर सकते अतः ऋषियों द्वारा बतायी हुई दिनचर्या पर जहाँ तक सम्भव हो सके अनुगमन करने के बाद ही योगादि क्रियाएँ अनुकूल पड़ेंगी। प्राकृतिक जीवन में सम्पूर्ण शरीर एवं मन आदि शक्ति-शाली होता है तथा उनमें रोगों आदि से लड़ने की शक्ति प्राप्त होती है। प्रकृति के निकट रहने वाले

प्राणियों को रोगादि तो कम होते ही हैं साथ ही उन्हें लगने वाली चोटें, आपरेशन आदि के घाव आदि भी असंयमित व्यक्ति की अपेक्षा जल्दी ठीक हो जाते हैं। आज भी ग्रामीण अंचलों में छोटे-मोटे रोग, चोटें आदि बिना उपचार किये ठीक होती हैं। तथ्य यह है कि प्रकृति ने स्वाभाविक रूप से हमें जो क्षमता प्रदान की है, यदि उसका दुरुपयोग न किया जाय तो हमारे जीवन में दवा-दारू की कभी आवश्यकता न पड़े, यही प्राकृतिक जीवन का मूल सिद्धान्त है।

योग साधना का जहां तक प्रश्न है, वह शरीर को स्वाभाविक शक्ति को जीवनपर्यन्त सक्षम बनाये रहती है। प्राणी बुद्धिवादी होने के कारण जब प्रकृति से समन्वय स्थापित करने चलता है, तो प्राकृतिक उपादानों का अधिकाधिक मात्रा में उपभोग करता है और इस आपाधापी में अपनी प्रवृत्तियों के नाते जब वह जाने-अनजाने कुछ भूलें कर बैठता है, ऐसी ही स्थिति में रोगों का जन्म होता है। योग साधना या योगासन बड़ी कुशलता से इन भूलों का परिमार्जन करते हैं।

इस पद्धति में अधिकांश रूप में रोगों का कारण उदर विकार ही बताया गया है। आहर-विहार में व्यतिक्रम के कारण उदर विकार होते हैं। शास्त्रों का कथन है कि हम जैसा अन्न ग्रहण करते हैं, हमारा मन भी उसी प्रकार से होगा। आहार की इसी विकृति का परिणाम है कि आये दिनों हृदय रोग सारे संसार में व्याप्त है और अचानक हृदय गति रुक जाने की घटनाएँ सर्वत्र घट रही हैं।

यहां पर यह बता देना आवश्यक है कि आजकल वायु विकार से बहुधा हृदय प्रभावित हो जाता है, जिसका सीधा सम्बन्ध दूषित आहार एवं असंयमित जीवन से है।

हृदय को बल प्रदान करने और अपने रक्त वितरण के महत्वपूर्ण कार्य को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए वक्षस्थल रेचक प्राणायाम विशेष लाभदायक होता है। ऐसी स्थिति में हमें चाहिये कि सादा

एवं सात्विक आहार अल्पमात्रा में ग्रहण करें। तेल, लालमिर्च, मसाले

एवं मांस आदि गरिष्ट आहार तथा शराब, सिगरेट आदि नशीले तत्वों को सर्वदा के लिए त्याग कर दें। मानसिक तनाव से बचने के लिए उपासना आदि की शरण में जायें और मन को समझाते रहें कि संसार में जो कुछ हो रहा है वह मंचपर नाटक की तरह है। ऐसी भावना का जागरण हो जाने पर भौतिक उतार-चढ़ाव का हृदय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता।

हृदय रोग होने से बचने अथवा किसी प्रकार के ऐसे विकार को दूर करने के लिए दोनों समय नियमित रूप से वक्षस्थल रेचक प्राणायाम लाभदायक होता है। आसनों में वज्रासन, योगमुद्रासन, प्रेतासन तथा शवासन गुणकारी हैं। आसनों के लिए किसी जानकर योगी से परामर्श लेना आवश्यक है। उपर्युक्त आसनों का नियमित अभ्यास, सादा एवं पौष्टिक आहार लेने के साथ ही यदि प्राणी जीवन में संयत एवं सदाचारी बना रहे तो उसे हृदय रोग की सम्भावना नहीं रह सकती।

मधुमेह से मुक्ति

'भोगे रोग भयं' सूक्ति के अनुसार मधुमेह विशुद्ध रूप से भोगजन्य व्याधि है जिसका वंशानुगत प्रसार संपूर्ण विश्व में तेजी से हो रहा है। किन्तु तथ्यतः मधुमेह अपने में कोई रोग नहीं है। इसकी स्थिति रक्तचाप की तरह है जिसकी चर्चा हम कभी अलग से करेंगे। चिकित्सा विज्ञान रक्तचाप को भी कोई रोग नहीं मानता। किन्तु आश्चर्य की बात है कि इन दिनों संसार में मधुमेह और रक्तचाप से ही अधिकाधिक प्राणी आक्रान्त हैं।

हम वैज्ञानिकों की इस खोज से सहमत हैं कि अन्तःस्रावी रासायनिक तत्त्व इन्सुलिन आदि की कमी के कारण पाचन क्रिया में व्यवधान उपस्थित होता है और संबद्ध प्राणी बहुमूत्रता तथा मधुमेह का शिकार हो जाता है। किन्तु इस रहस्य को जानते हुये भी हमारे डाक्टर एवं विज्ञान वेत्ता न तो स्वयं संयमित रहते हैं और न ही सामान्य प्राणी को संतुलित आहार विहार के लिए प्रेरित करते हैं। देखा गया है कि गरीब अथवा श्रमजीवियों की अपेक्षा साधन सम्पन्न लोग मधुमेह से अधिक पीड़ित मिलते हैं। अधिक शर्करायुक्त पदार्थों का सेवन करने वाले जो शारीरिकश्रम नहीं करते मधुमेह को खुला निमंत्रण देते हैं। यह भी देखा गया है कि मधुमेह से आक्रान्त मोटा व्यक्ति क्षरण के कारण क्षीण हो जाता है।

मूल बात की ओर ध्यान न देकर लोग डाक्टरों वैद्यों की शरण में चले जाते हैं। ऐसी स्थिति में यदि प्राणी चिकित्सकों का सहयोग लेकर

संयमित हो गया तो वह रोग मुक्त हो जायेगा किन्तु जो अपने खान-पान पर ध्यान न देकर केवल दवा पर निर्भर रहा तो वह रोग और दवा दोनों से मुक्ति नहीं पा सकता। बल्कि निरन्तर दवा लेते लेते एक दिन दवा भी आहार की तरह अनपची ही रहने लगती है और तब रोगी अपने बहुमूल्य जीवन को किसी भी कीमत पर बचा पाने में समर्थ नहीं हो पाता।

वास्तव में अज्ञानतो वश हम यह भूल जाते हैं कि दवा हमें रोग से लड़ने और उसे खदेड़ कर भगा देने के लिए सहयोग मात्र दे सकती है। शरीर का प्राकृतिक कार्य व्यापार जितना शिथिल होगा, रोग निवारण में उतनी ही देर लगेगी बशर्ते कि हम दवा को सहयोगी मान कर चलें। किन्तु यदि हम यह समझकर आहार विहार करते रहे कि दवा अकेले ही रोग का निवारण कर लेगी तो यह हमारी भूल होगी।

वैसे प्राकृतिक जीवन में दवा को कोई स्थान नहीं है। योगी भी दवा को महत्वहीन मानता है। प्राकृतिक चिकित्सा में उपवास और आहार विहार को सन्तुलित कर कठिन से कठिन रोगों से मुक्ति पाने का विधान है।

इतना तो हम पहले ही कह चुके हैं कि अभावग्रस्त अथवा परिश्रमी व्यक्ति की अपेक्षा संपन्न एवं आरामतलब प्राणी मधुमेह का शीघ्र ही शिकार हो जाता है। मधुमेह ही नहीं असंयमित और विलासी जीवन जीने वाला प्राणी युवावस्था पार करते-करते तमाम रोगों से आक्रान्त हो जाता है और अन्ततोगत्वा औषधियाँ ही उसकी खुराक हो जाती हैं, क्योंकि केवल औषधियों से स्वस्थ हो पाना संभव नहीं रह जाता। संपन्न व्यक्ति यह मानकर चलता है कि वह अपने ऐश्वर्य के बल पर रुपये खर्च कर स्वस्थ हो लेगा। संपत्ति के मद में वह यह भूल जाता है कि पैसे से स्वास्थ्य नहीं खरीदा जा सकता।

संपन्नता के दिनों में यदि संयम से न रहा गया तो शरीर रोगों का घर बन जायेगा। तली हुई, गरिष्ट, असंतुलित चीजें खाने

बेसमय आहार ग्रहण करने और शराब आदि नशीली वस्तुएं सेवन करने

तथा मीठे पदार्थों को बेअन्दाज खाते रहने से पाचन क्रिया इतनी कमजोर हो जाती है कि भोजन पचने से लेकर मल विसर्जन तक में नाना प्रकार के अवरोध उत्पन्न हो जाते हैं। तनाव अथवा चिन्ता पाचन क्रिया को बिगाड़ने में और भी सहायक हो जाती है। ऐसी स्थिति में ही मधुमेह, बहुमूत्रता, संग्रहणी, रक्तचाप, आदि दर्जनों रोगों का उदय होता है और मेरा अपना अनुभव है कि योगासनों के अभ्यास एवं संयमित जीवन से समस्त रोगों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। मैंने अनेक रोगियों पर योगासनों का प्रयोग किया है और आश्चर्य जनक सफलता मिली है। मधुमेह और उससे उत्पन्न गठिया आदि दुर्बलता, निराशा, अपच; मानसिक कमजोरी, दंत शूल आदि अनेक रोगों से ग्रस्त व्यक्ति जो अंग्रेजी आयुर्वेदिक आदि दवाओं से हारकर अपने जीवन से निराश हो चुके थे, हनुमान जी की कृपा से योगासनों के सहारे आज स्वस्थ एवं प्रसन्न हैं।

मधुमेह से पीड़ित प्राणी को यह मानकर योग की शरण में आना चाहिए कि यह एक आरोपित व्याधि है जिसे हम एक क्षण भी स्वीकार करने के लिए असमर्थ हैं। यह उपचार आरंभ करने की मानसिक तैयारी है। आज के अधिकांश विकार मानसिकता से ही आरंभ होते हैं अतः यह दृढ़ता एवं आत्म विश्वास आवश्यक है।

इसीलिए योगाचार्य योगासन आरंभ करने से पूर्व इष्ट के ध्यान की बात करता है। आप जिस भी देवी-देवता, पीर, महात्मा में आस्था रखते हों पद्मासन या सुखासन बैठकर आरंभ में ५ मिनट तक प्राणायाम के साथ चित्त को एकाग्र कर अपने इष्ट पर केन्द्रित रहें। इस स्थिति में गायत्री मंत्र अथवा अन्य किसी भी मंत्र का जाप भी चल सकता है। धार्मिक भावना से विमुख प्राणी को यह मानकर प्राणायाम करना चाहिए कि इससे श्वांस का शोधन होता है, फेपड़े को शुद्ध और

पर्याप्त वायु मिलती है जो स्वास्थ्य के लिए परम आवश्यक है। आपका यह स्थान शान्त, स्वच्छ एवं हवादार हो और समय प्रातः ४ से ७ का हो जब आप नित्यकर्म से निवृत्त होकर स्वच्छ वस्त्र धारण कर पूर्व की ओर मुंह किये पवित्र मन से आसन के लिए आरूढ़ हों। सुगन्धित अगरबत्ती या हवन का प्रयोग ऐसी स्थिति में विशेष लाभदायक होगा।

मधुमेह के लिए चार आसन पर्याप्त हैं जिन्हें क्रम से ३-३ मिनट से आरंभ कर (प्रत्येक आसन ३-३ बार) महीने भर में ५-५ मिनट तक करना चाहिए और अन्त में ५ से १० मिनट तक का शवासन कर प्रसन्न मुद्रा में आसन समाप्त करें।

१—जाह्नु सिरासन
२—खगासन
३—मृगासन
४—नाभिदर्शनासन

योगासन करने वाला सात्विक आहार ही पसन्द करता है। किन्तु मधुमेह से प्रभावित व्यक्ति को चीनी, चावल; आलू, मिठाई, तली हुई चीजें तथा मीठे पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए। सादा, सुपाच्य एवं अल्प किन्तु सन्तुलित आहार नियमित रूप से लेना चाहिए। सप्ताह में एक दिन अथवा एक समय का उपवास एवं समय के फलों तथा शाकादि का सेवन सर्वदा लाभप्रद होगा।

इन सबके बावजूद योगासनों का सही निर्णय एवं लाभ तभी निश्चित रूप से प्राप्कु हो सकता है जब कि किसी जानकार योगी से संपर्क स्थापित किया जाय। मेरा अपना मत एवं विश्वास है कि स्वस्थ व्यक्ति को भी कुछ आसन एवं संयमित आहार विहार करना चाहिए ताकि वह दीर्घजीवी एवं स्वस्थ रहने के साथ ही चिकित्सकों का मुंहताज न हो सके।

●

योग की जड़ें

महाभारत के बहुचर्चित यक्ष-युधिष्ठिर संवाद प्रसंग में एक महत्वपूर्ण पंक्ति है–धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां। भारत में योग की भी वही स्तिथि है। जिस प्रकार हमारे यहाँ धर्मतत्व सामान्य दृष्टि से नहीं देखे जा सकते, ठीक उसी प्रकार योग का प्रत्यक्षीकरण सहजता से नहीं किया जा सकता। इसीलिए विचारशील प्राणी, ऋषियों, मुनियों एवं ज्ञानियों की दूरदर्शितापर चकित रह जाता है जिन्होंने ज्ञान, साधना उपासना, व्रत संयम आदि ही नहीं बल्कि एक-एक सांस को धर्म के उस पवित्र बंधन से बांध दिया है फिर भी जिसका जुड़ना अथवा टूटना भी कोई महत्व नहीं रखता। हम ज्यों-ज्यों गहराई में उतरते हैं, सारे बन्धन अपने आप खुलते जाते हैं किन्तु अन्ततोगत्वा हमारी चिरन्तन उन्मुक्तता ही बन्धन बन जाती है।

भारत की इसी महान उपलब्धि के बलपर निपट एकान्त में भी व्यक्ति स्वेच्छाचारी नहीं हो पाता, सर्वोच्च सत्ता प्राप्तकर यहाँ का राजा कभी निरंकुश नहीं हो सका। रावण के संहार के लिए राम ने अयोध्या की गुहार नहीं लगायी और दूसरी ओर सत्ता प्राप्त कर भी भरत सिंहासन पर राम की चरणपादुका को स्थापित कर स्वयं सेवक बने रहे। राम के अनन्य सेवक हनुमान ने अपनी अपार शक्ति के बल पर क्या कुछ नहीं कर दिखाया, किन्तु उन्होंने अपनी सारी उपलब्धियों को भी राम के चरणों में अर्पित कर दिया।

देखा जाय तो इसी प्रकार अगणित विभूतियों से हमारे धर्मग्रन्थों एवं इतिहास के पन्ने रंगे हुए हैं जिनकी शक्ति एवं साधना से हम चकित

रह जाते हैं। यह सब योग साधना का ही प्रतिफल है जिसकी महिमा हमारे समस्त धर्मग्रन्थों में गायी गई है। धरती पर सबसे प्राचीन एवं अपौरुषेय ग्रन्थ ऋग्वेदके अनुसार–

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपाश्चितपश्चनम।
मधीनां योगाभिन्वति ॥

हवियों की वृद्धि एवं समृद्धि योग द्वारा ही होती है। अतः कोई भी यज्ञ योग के बिना सिद्ध नहीं हो सकता।

'युज समाधौ' धातु से घज् प्रत्यय होकर बने शब्द 'योग' का अर्थ समाधि है जिसकी प्राप्ति के लिए महर्षि पतंजलिने चित्तवृत्तियों के निरोधकी बात कही है। महर्षिने योगको आठ अंगों में बांटकर अष्टांग योग में समाधिको अन्तिम स्थान दिया है जो इसकी चरम उपलब्धि है।

श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णके ध्यानमें तन्मय गोपियोंकी समाधिस्थ अवस्थाका सजीव वर्णन मिलता है। व्यास जी कहते हैं–

गतिस्मितं प्रेक्षणभाषणादिषु प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढ़मतयः।
असावहं त्वित्यवलात्सदात्मिका न्यवेदिषुः कृष्णविहार विभ्रमाः।

श्रीकृष्णचन्द्रकी गति, चितवन एवं भाषणादिके ध्यानमें निमग्न गोपांगनाएं कृष्णस्वरूप होकर उन्हींके समान चेष्टाएं करती हुई अपने को ही कृष्ण समझने लगीं।

हिन्दीके कवि रत्नाकरने 'उद्धव' शतक काव्यमें गोपियोंकी इसी स्थिति का वर्णन किया है–

राधिका कान्हको ध्यान धरै
तब कान्ह ह्वै राधिकाके गुन गावै।

कर्म, ज्ञान एवं योग के संगमपर श्रीमद्भागवत तीर्थराज प्रयाग के समान है जिसमें निमज्जित होकर कितने श्रद्धालुओंने मुक्ति प्राप्त की है; कहा नहीं जा सकता।

समाधिकी सिद्धावस्था ही योग साधनाकी चरमोपलब्धि है। समाधिका अर्थ है परमात्मा और जीवात्माकी एकताका ज्ञान होना, क्योंकि, आत्मा नित्य, सर्वव्यापी और कूटस्थ है। समाधि में रहकर जब सभी भूतोंकी विस्मृति हो जाय और परमात्माके साथ एकाकार हो जाता है तब वह केवल परब्रह्म हो जाता है।

भारत में योग साधना और उसकी उपलब्धियोंकी सर्वत्र व्यापक चर्चा है। जैन और बौद्ध या सनातनसे इतर जितने भी धर्म-सम्प्रददाय इस देश में उदित हुए योग साधनाकी अहमियतको सबने स्वीकार किया। आज तो संसारके सभी विकसित एवं विकासशील देश भौतिक चकाचौंध से ऊबकर भारतीय योग की शरणमें आ रहे हैं।

किन्तु सत्य तो यह है कि सही जानकारी आज शायद बहुत कम लोगोंको ही है। मुझे उस समय बहुत दुःख होता है जब कुछ ढोंगी साधु वेशधारी काशी, अयोध्या आदि तीर्थोंपर विदेशी युवकोंको गांजेके नशेमें धुत होकर ब्रह्म ध्यानमें डूबे रहनेका उपदेश देते हैं। आजके कुछ तथाकथित योगियोंने भी मनमाना शुल्क लेकर उल्टा-सीधा आसन बताकर योग-ज्ञान देनेका स्कूल खोल दिया है जिसका दर्शन जीवन संयम और साधनासे सदा दूर रहा है और जो पारिवारिक परिस्थितियों से पराजित होकर घर त्यागकर समाजपर बोझ बने हुए हैं। ये तन और मनसे भोगी लोग न केवल भारत को बदनाम कर रहे हैं बल्कि योगविद्याको कलंकित करने में जुटे हुए हैं।

उच्च शिक्षा प्राप्तकर कुछ लोग भोगके द्वारा योगको सीख दे रहे हैं तो कुछ चालाक लोग तरह-तरहकी पुस्तकें छापकर धन संग्रह करने में जुटे हुए हैं। आज पत्र पत्रिकाएं भी योग शीर्षकसे आसनोंके नामपर आकर्षक चेहरे छापनेमें लगी हुई हैं। योगकी बढ़ती हुई मांगको देखते हुए सभी लोग बहती गंगामें हाथ धोना चाहते हैं। आश्चर्य तो तब

होता है जब हमारे कुछ जानकर महात्माओं और योगियोंको अभी भी नहीं पहचाना जा रहा है और न ही योग सम्बन्धी ग्रन्थोंके आधारपर सही सामग्री प्रकाशित की जा रही है। सत्य तो यह है कि योगासन योग विद्याका आरंभिक पाठ है। केवल योगासनको ही योग करार देना और उसके बलपर सुख-शान्ति अथवा मोक्षकी कामना करना भारी भूल होगी।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि महर्षि पतंजलिने योग को आठ अंगों में विभक्त किया है जिन्हें क्रमसे—यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि कहते हैं। इन आठों अंगों की व्याख्या अष्टांग योग में की गयी है। संक्षेपमें इतना कहना उचित होगा कि इनका क्रमसे अभ्यास करने पर ही योग की सच्ची उपलब्धि हो सकती है। इस उपलब्धि के लिए हफ्ते महीने का समय नहीं बल्कि जीवन खपाना पड़ता है।

योगकी ओर उन्मुख प्राणी को भली भांती समझ लेना चाहिए कि योगासनसे शरीर निरोग अथवा स्वस्थ रह सकता है और इस शरीर को स्वस्थ रखकर ही हम भौतिक एवं आध्यात्मिक सुख प्राप्त कर सकते हैं। जैसे स्वस्थ व्यक्ति खेती नौकरी या व्यापार में श्रमकर अपना भौतिक जीवन सुधार सकता है ठीक उसी प्रकार शरीर और मनकी शुद्धता के बिना आध्यात्मिक साधना भी असंभव है।

अविवेक से मुक्ति

योग का चरम लक्ष्य आत्मा का परमात्मा में विलय है और स्पष्ट रूप से समझने के लिए इसे जलकी बूंद का सागर में विसर्जन कहा जा सकता है। वाष्प बनकर आकाश में विचरण और बूंदों के रूप में धरती पर बरसने तथा नालों-नदियों अथवा कण-कण में सरसने के बाद जल की अन्तिम गति जिस प्रकार जलनिधि एकमेव सिन्धु ही है, ठीक उसी प्रकार आत्मा का स्थायित्व एकमात्र परमात्म तत्व में है।

ऋग्वेद के अनुसार सुषुम्णा पथ से जिन चार प्रकार के जीव सीधे ब्रह्म में जा मिलते हैं उनमें एक योग साधक भी है। शरीर त्याग के बाद जो अन्य तीन कोटियों के जीव ब्रह्म को प्राप्त होते हैं--(१) युद्ध में दिवंगत होनेवाला, (२) यज्ञकर्ता, (३) ओम् का जप करनेवाला। वैदिक वाङ्मय के अनुसार हमारे महान ऋषि-महर्षि अपनी सुचिता से सारी चिन्ताओं, द्विविधाओं आदि का परित्याग कर अपने इष्ट को सर्वभावेन समर्पित होकर भक्ति के माध्यम से योग का आश्रय लेकर चित्त को एकाग्र करते थे। सहस्रादि वर्षों तक जीवित रहनेवाले इन महान साधकों ने व्यापक दृष्टि से योग का आश्रय लिया और इसीलिए योग का क्षेत्र विस्तृत होता गया। ज्ञानयोग, कर्म योग, भक्ति योग जैसी योग की व्यापक धाराओं में बटकर भी साधनाएँ चलती रहीं। काला-न्तर में योग की महानतम उपलब्धियों से प्रभावित होकर राजाओं-महाराजाओं, सामन्तों एवं सम्भ्रान्तजनों ने भी योग का आश्रय लिया और पर्याप्त सफलता प्राप्त की। कुछ सामान्यजनों ने सन्सार की निः-सारिता का बोध होनेपर गृहत्याग कर अरण्य गमन किया और योग साधना में प्रवृत्त हो गये जिन्हें योगी के रूप में जाना गया। ऐसी

परम्परा आज भी चली आ रही है जहाँ सांसारिक जीवन से ऊबकर अथवा पराजित होकर कुछ लोग घर छोड़कर योगी हो जाते हैं और भिक्षाटन करके अपना जीवन यापन करते हैं। यद्यपि योग साधना से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

वेद भिन्न परम्परा के योगियों की भी एक लम्बी जमात है जिनमें बौद्ध, महावीर जैसे युगद्रष्टा और उनके अनुयायियों के नाम गिनाये जा सकते हैं। इन्होंने शुद्ध तप और ध्यान के माध्यम से अपनी शारीरिक आवश्यकताओं को सीमित किया और चित्त को नियन्त्रित कर योग की ओर अग्रसर हुए। बौद्ध धर्म के प्रवर्तक भगवान गौतम बुद्ध तथा जैन धर्म के संस्थापक महावीर स्वामी ने अपने शिष्यों को बार-बार आवश्यकताएं सीमित करने का न केवल उपदेश दिया बल्कि स्वयं कम से कम साधनों पर निर्भर रहकर योगाभ्यास द्वारा पूर्ण स्वस्थ एवं तेजवान बने रहे।

शुकदेव, याज्ञवल्क्य, पतंजलि, नामदेव, गोरखनाथ, भर्तृहरि आदि अनेक महान योगियों ने अपने-अपने युग का प्रतिनिधित्व किया। वैचारिक पृष्ठभूमि से जब केवल साधना पथ प्रबल होने लगा तब हठयोगियों की परम्परा का भी उदय हुआ जहाँ शरीर को अधारण रूप से कष्ट देकर साधना की जाने लगी। योग वैविध्य के इस उहापोह में आज का साधनहीन एवं स्वल्पायु प्राणी या तो योग से विमुख है या उसके सही स्वरूप को पहचानने में अक्षम है। ऐसी स्थिति में वर्तमान युग के उपलब्ध योगियों और सम्बन्धित विद्वानों का कर्तव्य हो जाता है कि वे सामान्य एवं सुबोध रूप से योग को प्रस्तुत करें। इसी दृष्टि से यह लघु ग्रंथ प्रस्तुत किया जा रहा है।

सामान्य प्राणी को आज यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि योग विद्या के आदि स्रष्टा कौन थे बल्कि उसे यह समझना है कि वास्तव में योग क्या है और अपेक्षित समय में इसके माध्यम से कैसे लाभ उठाया जा सकता है। महर्षि पतंजलि ने योग को आध्यात्मिक मार्ग बताया है

जो हमें आंतरिक विकास की ओर ले जाता है। यह संसार जन्म-मरण की परम्परा, शारीरिक पीड़ा, मानसिक चिन्ता, व्यग्रता एवं बाहरी पदार्थों द्वारा उत्पन्न कष्टों से भरा हुआ है। इस महान दुःखमय जीवन को निर्विघ्न बनाने के लिए योग का आश्रय लिया जा सकता है।

सांख्य योग के अनुसार बन्धन एवं दुःख आदि का कारण हमारा अविवेक है। यह अविवेक दूर होते ही प्राणी दुःख से मुक्त हो सकता है। गोस्वामी जी ने रामचरित मानस में इस अविवेक को स्वप्न के रूप में प्रदर्शित किया है वे कहते हैं—'जो सपने सिर काटै कोई, जागे बिनु दुःख दूर न होई।' स्वप्न में मिलने वाले त्रास से हम तब तक दुखी रहते हैं जबतक हमारी आंखें खुल नहीं जातीं। ठीक यही स्थिति संसार की है। संसार हर क्षण परिवर्तित हो रहा है। शास्त्र कहता है—

'अस्मिन परिवर्तिन संसारं मृतो कोवा न जायते।'

इस परिवर्तनशील संसार में जीव, व्यक्ति, वस्तु जो कुछ भी उत्पन्न होता है उसका अन्त भी हुए बिना नहीं रहता किन्तु इस तथ्य को विस्मृत कर हम सब कुछ बदलते हुए देखकर भी स्थायित्व के झूठे अविवेक से घिरे हुए हैं। यही हमारे दुःखका कारण है। संसार में जहां कहीं भी दुःख होगा वहां नासमझी अवश्य होगी। यह नासमझी ही अविवेक है। यदि हमारे मन में यह धारणा दृढ़ हो जाय कि शरीर नाशवान है, शरीरान्त के बाद जीव को अकेले जाना होता है, प्राणी का सारा प्रसार यहीं छूट जाता है, तो हम घोर भौतिकवादी नहीं रह सकते। प्रसंग में एक कहानी उपयुक्त होगी—

ऐयाश बादशाह वाजिद अलीशाह ने एक फकीर से अपने बुरे कर्मों से मुक्ति का मार्ग पूछा। फकीर ने अनमने भाव से शाह के मर्म पर चोट करते हुए कहा कि यह काम आसान नहीं है वैसे आज के पन्द्रहवें दिन आपकी मृत्यु हो जायगी। अच्छा यही होगा कि इस बीच आप अपनी सारी इच्छाओं की पूर्ति कर लें। फकीर तो चला गया किन्तु शाह चिन्ता में डूब गया। सोलहवें दिन जब वह शाह के दरबार में उपस्थित हुआ, वाजिद अली शाह क्रोधित हो उठा। मुस्कराते हुए फकीर ने कहा

—मैंने सचमुच झूठी भविष्यवाणी की थी किन्तु क्या यह बताने का कष्ट करेंगे कि इन पन्द्रह दिनों में आपने कितने कुकर्म किये । फकीर के इस वचन से शाह नतमस्तक हो गया । उसने शाह को समझाते हुए कहा—'यदि इन्सान को यह ज्ञान हो जाय कि वह अमर नहीं है तो बहुत सी बुराइयां अपने आप समाप्त हो जायेंगी किन्तु यह भान व्यवहार में होना सहज नहीं है । महाभारत में उठाये गये यक्ष-प्रश्न में जीवन को स्थायी समझने का आश्चर्य प्रथम है । यह अविवेक का चरमोत्कर्ष है जिसका मूल कारण घोर भौतिकवादिता है । नाशवान शरीर की साज-सज्जा के लिए हम आत्मा की बलि देते आ रहे हैं । मानस के वन प्रसंग में तुलसी दास जी ने कहा है—

सेवत लखन सीय रघुवीरहिं,
जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहिं ।

इस अविवेक को दूर करने के लिए हमें पलायनवादी नहीं बनना है—बल्कि शरीर एवं आत्मा के भेद को समझना है । शरीर से निष्ठापूर्वक सांसारिकता का निर्वाह करते हुए आत्मा को आध्यात्मिक उत्थान में लगा करके हम सुख-शान्ति का अनुभव कर सकते हैं । इसके लिए योग-साधना के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है । जिस तरह शिष्य की आरम्भिक कक्षाओं से विद्या प्रदान की जाती है, उसी प्रकार सामान्य प्राणी को आध्यात्मिक उत्थान के लिए योगासनों की शरण लेनी चाहिये । शरीर एवं मन की शुद्धि के बाद धारणा ध्यान आदि के अभ्यास में सफलता मिल सकती है । देश के महान योगाचार्यों, शिक्षाशास्त्रियों, संतों-महात्माओं से हमारी अपील है कि वे मानवता के कल्याणार्थ इस क्षेत्र में उपयोगी एवं उत्प्रेरक वातावरण तैयार करें ।
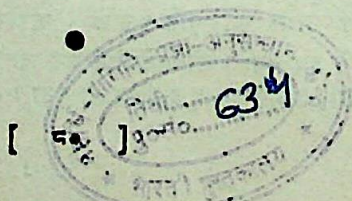
ऋतु चर्या

अंग्रेजी महीने और तिथियों के व्यापक प्रभाव से आज हम भारतीय महीने ही भूल गये हैं फिर ऋतुओं की जानकारी कैसे होगी। हमारे पूर्वजों ने पर्याप्त सोच विचार कर जो ऋतुचर्या बताई है उसे समझना और यथा-शक्ति उसका पालन करना हमारे लिए सर्वथा लाभदायक है।

शिशिर	:	माघ, फाल्गुन
वसन्त	:	चैत्र, वैशाख
ग्रीष्म	:	ज्येष्ठ, आषाढ़
वर्षा	:	श्रावण, भाद्रपद
शरद	:	आश्विन, कार्तिक
हेमन्त	:	मार्ग शीर्ष, पौष

इस प्रकार १२ महीने के साल को ६ ऋतुओं में विभक्त किया गया है और ऋतु के अनुसार चर्या का व्यापक विधान है। अज्ञानवश ऋतु के विपरीत चर्या करने से कभी-कभी प्राणी भयानक कष्ट में पड़ जाता है।

संक्षिप्त रूप से यहाँ हम ऋतुओं की चर्या प्रस्तुत कर रहे हैं।

हेमन्त

शीताधिक्य के कारण इस ऋतु में वायु बली होता है। अतः इस ऋतु में सोंठ के साथ हर्रें का सेवन करना चाहिए। भोजन में अजवाइन एवं काली मिर्च लाभकर होगी। तेल से शरीर का मालिस, सूर्य की किरणों तथा धूम रहित अग्नि का सेवन श्रेयस्कर है। अगर, धूप, हवन

आदि से सुगन्धित घर में निवास करना चाहिए। मात्रा में कम यदि गरिष्ठ भोजन भी लिया जाय तो पचने में कठिनाई नहीं होती। रात्रि में ठंडा भोजन वर्जित है।

शिशिर

पीपर के साथ हर्रें का सेवन (शेष विधि हेमन्त ऋतु जैसी ही) पूड़ी-कचौड़ी खाने के प्रेमियां को इस ऋतु में अपनी इच्छा पूर्ति कर लेनी चाहिए। भोजन के साथ अदरख अवश्य लेना चाहिए।

वसन्त

वसन्त ऋतु में कफ बलवान होकर जठराग्नि को मन्द कर देता है जिससे अनेक रोगों की संभावना बढ़ जाती है। अतः इस ऋतु में शहद मिलाकर हरीतकी का सेवन करना चाहिए और यथा शक्ति श्रम करना चाहिए।

ग्रीष्म

सफेद एवं स्वच्छ वस्त्रों को पहनना तथा गुड़ के साथ हरीतिका का सेवन करना चाहिए। इस ऋतु में धूप में अधिक समय तक नहीं रहना चाहिए। चांदनी का सेवन लाभदायक है। इस ऋतु में कटु, तिक्त, लवण तथा अम्लयुक्त आहार जलन एवं गर्मी पैदा करने वाले पदार्थ नहीं लेना चाहिए। अधिक शारीरिक श्रम भी वर्जित है।

वर्षा

नम वायु तथा पृथ्वी के भाप से वातावरण दूषित रहता है अतः कफ, पित्त, वात तीनों कुपित हो जाते हैं। अतः हरीतिका के साथ सेंधा नमक लेना चाहिए। सुगंधित एवं खुले, स्वच्छ वातावरण में रहना उचित है। तालाब, नदी अथवा वावली में स्नान न करे, उनका पानी न पीये। पीपर, पिपरामूल, सोंठ, चव्य तथा चित्रक का चूर्ण बनाकर

नित्य सेवन करे। दिन में भारी श्रम वर्जित है। दिन में सोना अथवा धूप सेवन वर्जित है।

शरद

इस ऋतु में वर्षाकाल का संचित पित्त कुपित हो जाता है अतः शक्कर के साथ हरीतकी का सेवन करना चाहिए। तीता, खट्टा, नमकीन, तेल, दही, पुरुआ हवा, दिन में सोना तथा धूप सेवन वर्जित है।

इस प्रकार छत्रों ऋतुओं में उचित ध्यान देकर हमें अपने परिवार तथा परिचितों को समझाना चाहिए ताकि हमारे ऋषियों की प्राचीन व्यवस्था का प्रचार-प्रसार हो, अधिकाधिक लोग संयमित जीवन के अभ्यासी बने और बच्चों में अच्छे संस्कार पड़ें।

—o—

ऋतुचर्या का महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि ऋतु सन्धि से ही अर्थात ऋतु आने के एक सप्ताह पूर्व से ही उसके अनुसार चर्या आरम्भ कर देनी चाहिए।

पाकशास्त्र के प्रमाणिक ग्रंथ 'क्षेमकुतूहलम्' के सिद्धान्तानुसार–

जीवनम् जीविनामन्नमृतूक्तं विधिपावितम्।
तदेवाविधिना युक्तं परिणामे विषोपम॥

अर्थात् : ऋतु के अनुसार बताया गया तथा विधिपूर्वक पकाया गया अन्न प्राणियों का जीवन है किन्तु वही भोजन विधि के विपरीत लेने से विष हो जाता है।

❀

प्रातः भ्रमण

स्वस्थ रहने के लिए प्रातः भ्रमण अपने-आप में पूर्ण उपचार है। पौराणिक कथाओं आदि से ज्ञात होता है हमारे यहाँ अनादि काल से ऋषि-महर्षि, राजा-महाराजा और साधु-सन्त प्रातः भ्रमण किया करते थे। महात्मा गाँधी, सन्त विनोबा के नियमित प्रातः भ्रमण से प्रभावित होकर उनके अनेक भक्त एवं अनुगामी आज भी प्रातः घूमते देखे जा सकते हैं। बड़े-२ नगरों में भी रहने वाले बहुत से संयमी लोग प्रातः घूमने निकल पड़ते हैं जहाँ प्राकृतिक वातावरण का अभाव होते हुए भी भोर की शुद्ध हवा मिलती है। जिससे वे स्वतन्त्र, स्वस्थ, प्रसन्न एवं स्फूर्त रहते हैं।

नगरों एवं धनी बस्तियों में रहने वाले लोगों के लिए प्रातः टहलना नितान्त आवश्यक है। क्योंकि दिन-भर उन्हें चिमनियों, मोटर, गाड़ियों अथवा भीड़-भाड़ के दूषित एवं शोरगुल से भरे वातावरण में रहना पड़ना है जो स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त ही हानिकारक है। ऐसे वातावरण में रहने वाले लोग यदि भोर में उठकर टहलने निकल पड़ें तो उन्हें काफी लाभ होगा।

महात्मा गाँधी इस तथ्य को समझते हुए बड़े-२ नगरों का विकेन्द्रीकरण चाहते थे। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास आदि महानगरों के मध्य में रहने वाले लोग यदि प्रातः टहलना चाहें तो दिन भर पैदल चलकर भी नगर से बाहर नहीं हो सकते। फिर उन्हें शुद्ध वातावरण कैसे मिलेगा।

यहाँ ये सारी बातें उठाकर हम समस्याएं नहीं खड़ी करना चाहते। किन्तु इतना जरूर कहेंगे कि हर व्यक्ति को प्रातः टहलने का प्रयास जरूर करना चाहिए और यह भी प्रयास करना चाहिए कि उसके टहलने का क्षेत्र साफ-सुथरा तथा हरियाली युक्त रहना चाहिए। बाग-बगीचे, पहाड़ी स्थल, नदियों का किनारा आदि टहलने के लिए सर्वोत्तम होता है।

टहलने के लिए सर्वोत्तम समय प्रातः सूर्योदय के पूर्व का माना गया है। चार बजे भोर में उठकर स्नानादि के बाद टहलना सबसे उपयुक्त होता है। बिना स्नान किये भी टहला जा सकता है किन्तु इससे पूर्ण लाभ नहीं होते। वास्तव में स्नान के बाद शरीर के रोम कूप खुल जाते हैं जिससे भोर की शुद्ध हवा अंग-प्रत्यंग को प्राप्त होती है।

हमारे प्राचीन योगियों की मान्यता है कि प्रातः चार बजे से पांच बजे के बीच में मलय समीरण चलता है, जो स्वास्थ्य के लिए बड़ा ही लाभदायक होता है। बहुत से योगी इसी मलय वायु का भक्षण कर बिना कुछ खाये पीये ही पूर्ण स्वस्थ और स्फूर्त रहते हैं। ४० दिवसीय जलाहार व्रत में मैं स्वयं इस वायु का सेवन करता हूँ। चिकित्सक बहुधा रोगियों को प्रातः भ्रमण की राय देते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा में प्रातः भ्रमण का बड़ा महत्त्व है। ऐसा अनुभव किया गया कि किसी प्रकार का भी विकार प्रातः टहलने से दूर हो जाता है। चिकित्सा के साथ भी यदि टहला जाय, तो शीघ्र लाभ मिलता है।

मट्ठा

मट्ठा को संस्कृत में तक्र कहते हैं। आयुर्वेद में मट्ठे की बड़ी महिमा है। आज के वैज्ञानिक भी मट्ठे को लाभकर बताते हैं। मट्ठे में आयरन, बिटामिन सी, एसिड आदि होता है। यह लीवर को ठीक कर शक्ति बढ़ाता है। किडनी को साफ कर मूत्र ठीक करता है। शरीर के लिए आयरन आवश्यक है जिसकी पूर्ति मट्ठे से की जाती है। पाचन क्रिया को ठीक कर मट्ठा आतों को भी शक्ति प्रदान करता है। यह एक शोधक तत्व है जो मल को साफ करता है! बल वर्द्धक तो इतना है कि इसका कल्प भी किया जाता है।

हमारे योगियों का तो यहाँ तक अनुभव है कि केवल मट्ठा लेकर जीवन पर्यन्त रहा जा सकता है। इसके सेवन से दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वालों को मट्ठा अवश्य लेना चाहिए क्योंकि इसके सेवन से वीर्य की तीव्र गर्मी का समन होता है जिससे आँख की ज्योति बढ़ती है, मस्तिष्क संतुलित रहता है और तेज बढ़ता है।

देवरिया जनपद के पिण्डी ग्राम निवासी महान साधक पं० शशि-नाथ पति त्रिपाठी विगत २५ वर्षों से केवल तरल पेय का सेवन करते हैं और अपने देदोप्यमान रूप से सबको चकित कर देते हैं। विभिन्न तीर्थस्थानों का भ्रमण एवं सत्संग ही आपका कार्य है।

ग्रामीण अंचलों में चिकित्सा करने वाले कई पुराने वैद्यों को मैं जानता हूँ जो मट्ठे के कल्प से अनेक रोगों की चिकित्सा कर चुके हैं।

पेट के कैंसर, जलोदर तथा आंत की टीबी में मट्ठा रामबाण का काम करता है। सूगर की बीमारी में मट्ठा पथ्य माना जाता है। रूसी, बाल गिरने, सिर की गर्मी, चक्कर आदि में मट्ठे से सिर धोना चाहिए।

मैंने स्वयं कुछ पेट के रोगियों पर आसन के साथ मट्ठे का प्रयोग कराया है। एक व्यक्ति के पेट में मल संचय से सदा पीड़ा बनी रहती थी, भूख समाप्त हो गयी थी, मिचली आती थी और वायु विकार से पीड़ित थे। मेरी राय मानकर उस व्यक्ति ने मट्ठे को अपने भोजन का आवश्यक अंग बना लिया।

प्रातः जलपान तथा दोपहर सायं भोजन के साथ और बीच बीच में प्यास लगने पर वे मट्ठे का ही सेवन करने लगे। सात दिनों के बाद ही उन्हें जुकाम हो गया। मैंने फिर भी मट्ठा चालू रखने को कहा। दूसरे सप्ताह में एक दिन प्रातः शौच के साथ ही उन्हें लगा कि उनका शरीर एक दम हल्का हो गया और सारी बेचैनी गायब हो गयी है।

उस निन से वे ठीक ही हो गये किन्तु मट्ठे का सेवन आज भी करते हैं। एक दुधारू गाय उनके यहां हमेशा रहती है और वे नियमित मट्ठा ग्रहण करते हैं।

सेवन विधि

उक्त घटना के अनुसार हर व्यक्ति को हमेशा मट्ठा ही नहीं लेना चाहिए। यह तो चिकित्सा थी। स्वस्थ व्यक्ति को दोपहर अथवा प्रातः जलपान या भोजन के बाद गाय का ताजा मट्ठा पीना श्रेयष्कर है। यदि जुकाम या शीत का प्रभाव रहे अथवा मौसम विशेष शीत प्रधान रहे तो मट्ठा पिलाना हानिकर है। सादा मट्ठा विशेष गुणकारी होता है। वैसे भुना हुआ जीरा हींग और काला नमक मिलाकर मट्ठा लेना सर्वथा हितकर होता है।

पहाड़ी अथवा शीत प्रधान क्षेत्रों में रहने वालों के लिए गर्म किया हुआ मट्ठा लाभकर होता है। आयुर्वेद एवं होमियोपैथ में मट्ठे से अनेक दवायें बनाई गयी हैं। पाक शास्त्र में भी मट्ठे का विविध प्रयोग है अतः इस गुणकारी तत्त्व को उपेक्षित मानकर त्यागना नादानी है।

दूध सेवन भी कम गुणकारी नहीं है किन्तु दूध को पचाना सहज नहीं है। दूध पेट में जाकर अम्ल पाते ही पहले दही के रूप में जमता है और पुनः पेट में इसका मन्थन होता है और तब उसके पोषक तत्त्व शरीर को प्राप्त होते हैं। किन्तु मट्ठे के लिए ऐसी बात नहीं है। दूध से मट्ठा बनने तक की क्रिया जब बाहर ही कर ली जाती है तो उसे ग्रहण करने पर पेट को पचाने के लिए कोई श्रम नहीं करना पड़ता।

मट्ठे के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण घटना याद आती है। एक व्यक्ति को नीद ही नहीं आ रही थी। मैंने देखा कि वह आसन करने लायक भी संप्रति नहीं है अतः मैंने उसे मट्ठा पिलाने की राय दी। इस प्रयोग का सुखद परिणाम हुआ मट्ठा लेने के आधे घंटे बाद ही उसे नीद आ गई। मट्ठे में अलकोहल होने के कारण एक प्रकार का शान्ति-दायक नशा भी होता है।

बहुमूत्रता, मलबद्धता, शोथ, पसीना आना आदि में लाभकर है। कच्चीडकार, मन्दाग्नि, रक्तहीनता, प्रदर, गिल्टी, शरीर में दर्द, शरीर फूलना, अकड़न, गठियावात, कंपन, गले की बीमारी, गर्भावस्था में वमन आदि में इसका प्रयोग कराया जा सकता है।

कुछ महान भारतीय योगी

यहाँ हम कतिपय महान भारतीय योगियों की उपलब्धियों को संक्षित रूप में प्रस्तुत करना उचित समझते हैं जिन्होंने अपनी योग साधना के बल पर संसार को चमत्कृत कर दिया। ऐसे योगियों और उनकी साधना पद्धति पर अलग अलग शोध करने की आवश्यकता है। यदि ऐसा किया जाय तो अनेक रहस्यों का उद्‌घाटन होगा। वे विभूतियां हमारे निर्माण में सदैव प्रेरक सिद्ध होंगी।

भगवान शंकर

भगवान् शिव को हम आदि योगी कह सकते हैं। भगवान शिव ने जब काम को जला दिया तो पृथ्वी पर हाहाकार मच गया। किन्तु पार्वती जी को कोई आश्चर्य नहीं हुआ। उन्होंने कहा—लोगों की दृष्टि में भगवान के आज कामदेव को जला दिया है किन्तु भगवान् शिव को मैं जानती हूँ कि वे कभी भी विकारयुक्त नहीं रहे। मेरी दृष्टि में शिवजी सदा से योगी ही रहे हैं।

पार्वतीजी की यह उक्ति स्पष्ट करती है कि शंकरजी एक महान योगी भी थे। ऐसे महान योगी ने विष का पान कर देवताओं के बीच अपनी दिव्य साधना का परिचय दिया था। ऐसे महान योगी को पति के रूप में पाने के लिए माता पार्वती ने कम साधना नहीं की। पूर्वजन्म में सती के रूप में उन्होंने अपने पिता दक्ष के यज्ञ में योगाग्नि प्रज्ज्वलित कर आत्मत्याग किया था। उनका स्पष्ट उद्‌घोष था—

जनम जनम यह रगर हमारी।
वरउं संभु नत रहउं कुंआरी॥

हनुमान जी

हनुमानजी की वीरता हमारे धर्मग्रंथों में वर्णित है। ऐसा महान बली संपूर्ण भूखण्डन पर दुर्लभ है। वे ऋद्धि, सिद्धि, नवनिधि के दाता हैं। महान योगी और राम भक्ति के बल पर उन्होंने अपना जो स्थान बनाया, उतनी ऊँचाई तक कोई नहीं पहुँच सका।

उड़कर यात्रा करना, पर्वत को उखाड़ना, सागर पर पत्थर तैराना, विशाल एवं लघु रूप ग्रहण करना, राम एवं सीता जी के मन की बात जान लेना आदि घटनाएं बताती हैं कि हनुमान जी अच्छे योगी भी थे। किसी कवि ने तो यहाँ तक कहा है—

जेती करी करनी प्रभु ने
हनुमान बली सब तोरे भरोसे।

महाराज जनक

एक राजा होकर भी महान योगी एवं तत्त्ववेत्ता के रूप में महाराज जनक का नाम आदरपूर्वक लिया जाता है। आपकी योग निष्ठा जग जाहिर थी। तत्त्वज्ञान एवं ब्रह्मविद्या सीखने के लिए दूर दूर से जिज्ञासु लोग आपके पास आया करते थे।

आदि शंकर

जगद्गुरु शंकराचार्य को आदि शंकर के रूप में जाना जाता है। इनकी जीवनी पढ़ने से ज्ञात होता है कि विना योग साधना के ऐसे कार्य संपादित नहीं कर सकते थे। बाल्यावस्था में ही आपने वेदों-शास्त्रों का अध्ययन किया और उच्च कोटि के कवि, व्याख्याता एवं वक्ता बन गये। उसी समय आपने संन्यास ले लिया।

आदि शंकर के योग चमत्कार की अनेक घटनाएँ चर्चित हैं। पर काया प्रवेश विद्या आप जानते थे। अपने संन्यास काल में नर्मदा नदी की बाढ़ रोककर आपने समस्त संन्यासियों की रक्षा करने के साथ ही

उन्हें चकित कर दिया था। इसी संदर्भ में आपने नर्मदाष्टक स्तोत्र की

रचना की थी—त्वदीयपाद पंकजं, नमामि देवि नर्मदे ! आनन्द गिरि नामक निरक्षर व्यक्ति आपकी कृपा से महान विद्वान हो गया। हस्तामलक नामक गूंगे व्यक्ति को वाणी देकर आपने अपना शिष्य बनाया था।

इनके बारे में अनेक घटनाएँ मिलती हैं जो इनकी योग साधना का परिचय देती हैं। कहते हैं माता जी के अन्तिम दर्शन के लिए आप आकाश मार्ग से उड़कर केरल पहुँचे थे। जिससे उनके वायु गोपा होने की पुष्टि होती है।

अत्यन्त ही थोड़े समय में संपूर्ण देश के हिन्दू समाज को एक सूत्र में बांधने, वेदों, शास्त्रों की व्याख्या करने, स्तोत्रों-श्लोकों एवं ग्रन्थों की रचना करने का इतना सारा कार्य कोई महान योगी ही कर सकता है। आपने ही चार पीठों की स्थापना कर धार्मिक दृष्टि से भारत को एक सूत्र में बांध दिया।

पाठकों के नित्य पाठ हेतु पुस्तक के अन्त में आदि शंकर द्वारा संस्कृत भाषा में रचे गये १० श्लोकी शिव स्तोत्र को भी दिया गया है।

गुरु गोरखनाथ

गुरु गोरखनाथ महान योगी रूप में विख्यात हैं। वे नाथ पन्थ के प्रवर्तक हैं। आदि शंकर के बाद देश के महान योगी माने जाने वाले गुरु गोरखनाथ अखण्ड ब्रह्मचारी थे। मत्स्येन्द्रनाथ को आत्मस्वरूप का ज्ञान गोरखनाथ ने ही कराया था। कहते हैं कि शालि वाहन नरेश के पुत्र पूर्ण चन्द्र को उनकी सौतेली माँ ने हाथ पैर कटवा कर कुएँ में फेकवा दिया था। गुरु गोरखनाथ ने पूर्ण चन्द्र को बाहर खीच कर उसका उद्धार किया और उसे योग साधना की शिक्षा दी। आगे चलकर यही पूर्ण चन्द्र चौरंगी नामक प्रख्यात योगी के नाम से प्रसिद्ध हुए। गुरु गोरखनाथ की योग साधना के सन्दर्भ में अनेक घटनाएँ प्रचलित हैं।

अनेक साधु-सन्त एवं सिद्ध महात्मा आपसे दीक्षा प्राप्त करने आया करते थे। आकाश मार्ग से चलना समाधिस्थ होकर बैठना आपके लिये सहज बात थी। नाथ सम्प्रदाय की पीठ परम्परा में अनेक सन्त हो गये हैं जिन्हें योग विद्या का अच्छा ज्ञान था। जैन और बौद्ध सम्प्रदाय की ही भाँति नाथ सम्प्रदाय में भी योग साधना की अपनी परम्परा रही है।

सन्त ज्ञानेश्वर

सन्त ज्ञानेश्वर महान योगी और ज्ञानी भक्त के रूप में विख्यात हैं। आपकी योग साधना के आश्चर्य जनक प्रसंग साधु-सन्तों के बीच आज भी सुनने को मिलते हैं। कहते हैं प्राणिमात्र को एक समान समझने वाले सन्त ज्ञानेश्वर के सामने जब कुछ लोग एक भैंस लेकर पहुँचे और कहने लगे कि तुममें और इस भैंस में जैसा कि तुम कहते हो क्या एक ही आत्मा वास करती है? अगर यह सत्य है तो भैंस में और तुममें कोई भेद नहीं है। ज्ञानेश्वर जी ने उत्तर दिया हाँ तनिक भेद नहीं। इतना सुनकर उन्होंने भैंस को मारना शुरू किया और कहा कि अगर तुम दोनों में एक ही आत्मा है तो यह चोट तुम्हें भी लगनी चाहिए उस समय लोगों को आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब ज्ञानेश्वर जी ने अपनी पीठ खोलकर दिखा दी जिस पर चोट के कई शाटे पड़े हुए थे। लज्जित होकर उन लोगों ने ज्ञानेश्वर जी का पैर पकड़ लिया। फिर भी एक घमंडी व्यक्ति ने इस घटना की जानकारी होने के बाद भी ज्ञानेश्वर को नहीं पहचाना, उसने व्यंग्य भरे शब्दों में कहा—कि अगर भैंस में तुममें भेद नहीं है तो क्या तुम भैंस से वेद, मंत्र कहलवा सकते हो। सन्त ज्ञानेश्वर ने भैंस की पीठ पर हाथ रख दिया और वह वेद मंत्र बोलने लगी।

ऐसा कहा जाता है कि सन्त ज्ञानेश्वर ने एक मृत व्यक्ति को अपने योग बल से पुनः जीवित कर दिया था। ऐसा भी कहते हैं कि श्राद्ध कर्म के अवसर आपने अपने पितृगण को सशरीर उपस्थित कर दिया

था। एक बार चांगदेव नामक योगी सिंह पर सवार होकर जब ज्ञानेश्वर से मिलने गये, ज्ञानेश्वर दीवार पर बैठे थे और उनके आदेश से दीवार ही चलने लगी। चांगदेव यह घटना देखकर चकित रह गये।

सन्त एकनाथ

सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में जन्में सन्त एकनाथ ने शूल भंजन पर्वत पर वर्षों तक कठोर साधना की थी। एक बार किसी व्यक्ति ने यात्रा पर जाते समय इन्हें अपना कीमती पारस पत्थर रखने को दिया किन्तु सेवकों की लापरवाही से वह पारस गुम हो गया।

यात्रा से लौटने के बाद उक्त व्यक्ति ने एकनाथ से अपने द्वारा दिया गया पारस पत्थर मांगा। एकनाथ जी ने बहुत खोजा पर कहीं पता न चला। उक्त व्यक्ति को लगा कि सन्त उसके पारस को कहीं छिपा लिया है। एकनाथ को इसका आभास लग गया। उन्होंने उक्त व्यक्ति को सांत्वना दी और गोदावरी तट पर ले जाकर नदी से पत्थरों का ढेर निकाल कर कहा कि इसमें से तुम अपना पारस खोज लो। उक्त व्यक्ति इस घटना को देखकर चकित रह गया क्योंकि वे सारे पत्थर ही पारस थे।

तैलंग स्वामी

दक्षिण भारत के महान सन्त एवं योगी तैलंग स्वामी ९० वर्ष की आयु में भी पूरी तरह जवान दिखाई पड़ते थे। आपने ७८ वर्ष की उम्र में संन्यास ग्रहण किया था। जंगल में शिकार के लिए निकले नेपाल नरेश स्वामी जी को देखकर उस समय चकित रह गये जब कि एक भयानक सिंह कुत्ते की तरह उनके पाँव चाट रहा था।

एक बार तैलंग स्वामी मार्ग में चले जा रहे थे तभी उन्हें एक महिला का करुण क्रन्दन सुनाई पड़ा। स्वामी जी ने पास जाकर देखा तो वह महिला अपने मृत बच्चे के शव के पास बैठी विलाप कर रही थी। स्वामी जी ने द्रवित होकर बच्चे को पुनर्जीवित कर दिया।

तैलंग स्वामी ने उज्जैन नरेश की तलवार गंगा नदी की धारा में फेक दी। नरेश बहुत नाराज हुए तो स्वामी जी ने धारा में हाथ डाल कर दो तलवारें निकाल कर राजा के सामने प्रस्तुत कर दिया। उज्जैन नरेश अपनी तलवार न पहचान कर लज्जित हो गये।

आपने अनेक रोगियों, दीन-दुखियों को क्षण भर में संकट मुक्त कर दिया। अपनी योग साधना के बल पर तैलंग स्वामी ने २८० वर्ष की आयु में काशी में शरीर त्याग किया था। आप इतने महान सिद्ध योगी थे कि बन्द कमरे से विना द्वार खुले ही ाहर निकल आते थे।

गंभीरनाथ

जम्मू-कश्मीर में जन्मे स्वामी गंभीरनाथ ने गुरु गोरख नाथ से दीक्षा ली थी और योग साधना में पारंगत थे। आपके सम्बन्ध में अनेक आश्चर्यजनक घटनाऐं प्रचलित हैं।

एक बार घनघोर वर्षा हो रही थी किन्तु गंभीर नाथ अपने कुछ शिष्यों के साथ मैदान में बैठे थे और किसी के ऊपर एक बूंद भी पानी नहीं पड़ सका।

आप रोगियों की चिकित्सा भभूत देकर किया करते थे। सूक्ष्म शरीर से यात्रा करने की सिद्धि आपको प्राप्त थी। इग्लैंड में बैरिस्टरी पढ़ने गये एक युवक के घर वाले जब उसकी चिन्ता में व्याकुल थे, गंभीरनाथ ने कुछ ही क्षणों में उसका कुशल समाचार लाकर बता दिया। इग्लैंड से लौटने के बाद उस व्यक्ति ने गंभीरनाथ द्वारा वहाँ जाकर मिलने और हाल चाल पूछने की बात बताई।

सबसे आश्चर्यजनक घटना यह थी कि जब वे अपने गुरु गोरखनाथ के पास गोरखपुर मठ में जाते थे, वहाँ पिंजरे में बन्द एक बाघ को खोलकर अपने साथ लेकर घूमते थे। वह अपनी दुम हिलाकर इनका आदर करता था।

श्यामाचरण लाहिड़ी

काशी के लोग श्यामाचरण लाहिड़ी को भला कैसे भूल सकते हैं जिन्होंने अपनी योग साधना एवं तपस्या के वल पर उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में यहाँ के लोगों का कल्याण किया। आपका जन्म १८२८ में बंगाल के कृष्ण नगर नामक स्थान पर हुआ था और विद्या अध्ययन के बाद सरकारी नौकरी करने लगे।

कहते हैं कि पूर्व जन्म की तपस्या खण्डित हो जाने के कारण आप को पुनः जन्म लेना पड़ा था। ३३ वर्ष की उम्र में आपका तबादला रानीखेत के लिए हो गया। इस तबादले में भी इनके पूर्वजन्म के गुरु का हाथ था। रानीखेत की एक एकान्त पर्वतीय गुफा के समीप जब शाम को श्यामाचरण जी घूमते हुए पहुंचे, इनके गुरु ने इनका नाम लेकर बुलाया और योग साधना के वल पर इनके पूर्वजन्म की याद दिलाई।

फिर तो ये गुरु के चरणों में झुक गये। प्रवास काल के ये कुछ वर्ष श्यामाचरण के आत्म निर्माण के वर्ष थे जहाँ नित्य सायं गुरु के चरणों में बैठकर साधना प्राप्त करते रहे। रोग मुक्ति, इच्छापूर्ति आदि का ज्ञान उन्हें जब गुरुदेव से प्राप्त हो गया तब गुरु ने एक दिन इन्हें समझा कर कहा कि इस जन्म में तुम्हें मानव कल्याण करना है। अब शीघ्र ही तुम्हारा तबादला होगा। मैंने तुम्हें जो कुछ ज्ञान दिया है उसके बल पर मानव जाति की जमकर सेवा करना। गुरु ने यह भी कहा की मेरा आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ रहेगा, फिर भी जब कभी मुझे याद करोगे मैं आ जाऊंगा।

जैसा गुरु ने कहा था वही हुआ, शीघ्र ही लाहिड़ी जी के तबादले का आदेश आ गया। गुरु को प्रणाम कर वे वाराणसी आ गये। एक दिन अपने मित्रों के सामने प्रदर्शन के ख्याल से लाहिड़ी जी ने अपने गुरु का आवाहन किया। गुरुदेव प्रकट तो हो गये किन्तु लाहिड़ी जी

पर नाराज होकर बोले, अब तुम्हारे बुलाने पर मैं कभी नहीं आऊंगा। साधना को प्रदर्शन के लिए प्रस्तुत करना अनुचित है।

गुरु का सभी मित्रों ने दर्शन किया और प्रसाद ग्रहण कर वे चले गये। ऐसा कहा जाता है कि इसके बाद एक बार गुरुदेव स्वयं पहुंचे थे जब लाहिड़ी जी बीमार पड़ गये थे। लाहिड़ी जी ने अपने जीवन में हजारों प्राणियों का भला किया। इनके यहाँ भीड़ लगी रहती थी। सूक्ष्म शरीर से आप भी यात्रा किया करते थे। एक अधिकारी की पत्नी को सूक्ष्म शरीर से इग्लैंड जाकर आपने चिकित्सा कर उसे रोग-मुक्त किया था।

प्रख्यात योगी योगानन्द परमहंस नें अपनी कृति 'योगी की आत्म-कथा' में श्यामाचरण लाहिड़ी की योग साधना की चर्चा करते हुए लिखा है कि लाहिड़ी जी ने अपनी साधना के बल पर अनेक व्यक्तियों की प्राणरक्षा की है। जन कल्याण हेतु वे पूरी तरह समर्पित थे। स्वामी योगानन्द के एक मित्र को रेंड़ी का तेल पिलाकर लाहिड़ी जी ने पुन-र्जीवित कर दिया था।

लाहिड़ी जी को रानीखेत में ही एक महात्मा द्वारा वायुगोपा विद्या का ज्ञान प्राप्त हुआ था। एकान्त कमरे में आसन लगा कर वे जमीन के ऊपर आकाश में उठ जाया करते थे। काशी निवास के दौरान अनेक महात्मा एवं ज्ञानी ध्यानी दूर दूर से आपसे मिलने आया करते थे।

अपने गुरु की आज्ञा मानकर लाहिड़ी जी गृहस्थ आश्रम में रहकर जीवनपर्यन्त समाज की सेवा करने के बाद १८९५ ई० में स्वर्गवासी हुए।

स्वामी विशुद्धानन्द

स्वामी विशुद्धानन्द जी वंगाल की उपलब्धि थे। बचपन में पागल के काट लेने से इन्हें इतनी पीड़ा हुई जिससे मुक्ति पाने के लिए इन्होंने आत्महत्या कर लेना ही उचित समझा। ऐसा सोचकर जब वे कलकत्ते

के समीप हुगली नदी में कूद पड़े, एक महात्मा ने बीच धारा में प्रकट होकर इनकी जान बचाई और वही बीच धारा से उठाकर आकाश मार्ग से अष्टभुजा के समीप एक सन्त के यहाँ ले गये जिसने राजराजेश्वरी मठ में ले जाकर योग साधना की शिक्षा दी।

यहाँ रहकर स्वामी जी ने न केवल गूढ़ ज्ञान प्राप्त किया बल्कि अनेक दुःखित जनों का कल्याण भी किया। वे इतने सिद्ध सन्त थे कि पत्थर को छूकर स्फटिक आदि बना देते थे।

उनके हाथ उठाने मात्र से मनचाही वस्तु सामने आ जाती थी।

स्वामी रामतीर्थ

स्वामी रामतीर्थ एक समर्थ योगी थे। आत्म साक्षात्कार करनेवाले सन्तों में इनका प्रमुख स्थान था। इनके जीवन दर्शन पर अनेक ग्रंथ मिलते हैं। इनके दर्शन मात्र से अनेक नास्तिक आस्तिक हो गये।

रामतीर्थ की साधना अद्वितीय थी। हिंसक पशुओं के बीच आप नि.शंक विचरण करते देखे जाते थे। अपने हाथों से पैसे नहीं छूते थे। वे जीवन मुक्त महात्मा थे। अनेक साध-सन्त आपके दर्शन हेतु व्याकुल रहा करते थे।

आपकी दृष्टि मात्र से पीड़ित जन सुखी हो जाते थे।

कमरिया बाबा

विन्ध्याचल की अष्टभुजी पहाड़ी के ऊपर गेरुआ तालाब के निकट एक निर्जन गुफा में अपना आवास बनाकर साधना करने वाले कमरिया बाबा का संसार से कोई सरोकार नहीं था फिर भी उनके दर्शन की भीड़ लगी रहती थी।

कहते हैं वे इतने महान योगी थे कि सैकड़ों वर्षों तक एक अवस्था में रहकर भक्तजनों पर कृपा उड़ेलते रहे। उन्हें कभी किसी ने न तो कुछ खाते-पीते देना और न ही कभी वे बीमार दिखाई पड़े। दो तीन

बजे रात ही वहाँ से ३-४ मील दूर चलकर गंगाजी स्नान कर लेते थे।

वर्षों तक आपने केवल गंगाजल पीकर साधना की थी। समीपवर्ती ग्रामीणों का कहना है कि ढाई सौ वर्ष की उम्र तक जीवित रहने के बाद आपने स्वेच्छा से शरीर त्याग किया था।

वड़े बूढ़े ग्रामीण तथा वहाँ रहने वाले लोगों ने स्वामी जी को कभी कभी हफ्तों तक समाधि में वैठे देखा था। कई कई घंटे तक वे शीर्षासन किया करते थे।

इनसे सम्बन्धित अनेक विचित्र घटनायें कही जाती हैं। एक वार वाराणसी के कुछ युवक शाम को उसी पहाड़ी पर कहीं भोजन बना रहे थे। अंधेरा हो जाने पर दो युवक शौच के लिये गये तो रास्ता भूल गये। घंटों परेशान होने के वाद वे इन्हीं महात्मा की गुफा पर पहुंचे। महात्मा ने इन्हें आश्वस्त किया और कन्द मूल आदि खिलाकर आंख मूदने को कहा। इसके पांच मिनट वाद जव उन्होंने आंख खोली तो वे अपने साथियों के बीच पहुंच चुके थे।

कमरिया बाबा का निश्चित जन्म स्थान कोई नहीं जानता। कुछ लोग इन्हें गुजरात और कुछ लोग बंगाल से आया हुआ बताते हैं। जो भी हो किन्तु इनकी विलक्षण योग साधना का सभी लोहा मानते हैं।

लाल बाबा

कलकत्ता के वेलूर मठ के महान साधक लाल बाबा को दिवंगत हुए १० वर्ष हो रहे हैं। शक्ति के उपासक एवं महान योग साधक लाल बाबा के पूर्व नाम का पता नहीं है। उन्हें लाल रंग इतना प्रिय था कि उनका विशाल आश्रम, मोटर गाड़ियां, वैल, गाय, सेवक आदि सब लाल रंग में रंगे दिखाई पड़ते थे।

आपने समाज सेवा के लिए विद्यालय भी चलाया था जिसमें पढ़ने वाले बच्चे एवं पढ़ाने वाले अध्यापक लाल रंग के कपड़े पहनते थे।

लाल बाबा सामान्य कद के अधिक उम्र वाले वृद्धों से भी बड़े फुर्तीले थे। अनेक टुकड़ों को जोड़कर एक लम्बा झगूला पहनते थे और सिर के बाल की लटें धरती को छू लेती थीं। आने वाले दर्शनार्थियों को थोड़ी सी पंजीरी प्रसाद में दिया करते थे।

बड़े बड़े सेठ साहूकार आपके भक्त थे और इन्हीं के बल पर आप हजारों रुपये रोज खर्च करवाते थे। इसके बावजूद आप पैसे को अपने हाथों से नहीं छूते थे।

आश्रम के सैंकड़ों लोगों के अतिरिक्त आगन्तुकों को दिव्य भोजन की व्यवस्था थी किन्तु लाल बाबा स्वयं गाय का दूध ग्रहण करते थे। दर्शनार्थियों पर आप सहज ही कृपा करते थे। जिस इच्छा से जो व्यक्ति जाता था, लाल बाबा बिना बताये ही जान जाते थे। इनके आश्रम में पलने वाले पशु तक इनके पुकारने पर पास आ जाते थे।

लाल बाबा भोर में ही उठकर अपनी साधना में लग जाते थे और आश्रम की व्यवस्था इनकी आन्तरिक इच्छा से चलती थी।

बाबा गोविन्द दास

चौरी बाजार के निकट एक ऊसर को लहराते बाग के रूप में बदलने वाले गोविन्द दास ८० वर्ष की आयु में भी आठ-आठ घंटे फावड़ा चलाते थे। आपने अपने हाथों दो बावड़ियां तथा एक कुआं खोद डाला था।

ऊँचा माथा, सफेद जटायें और लम्बा चौड़ा शरीर देखकर दर्शक सहज ही प्रभावित हो जाता था। बाबा जी जाड़े के दिनों में भी नंगे बदन रहते थे। समीपवर्ती गाँवों में एक एक दिन करके वे किसानों के घर जो कुछ मिल जाता, भोजन कर लेते थे और दिन रात अपने कर्म में जुटे रहते थे।

आप कभी बीमार नहीं पड़े और न ही इनके चेहरे पर कभी

शिथिलता ही दिखाई पड़ी। इनके द्वारा लगाये गये पेड़ जब फल देते तो बाबा जी उसे ग्रामीणों में बांट देते थे।

बाबा ने कभी भी किसी से कुछ मागा नहीं। इनकी कोई आवश्यकता नहीं थी। रात्रि के समय जब ग्रामीण अपने अपने घर चले जाते, बाबा जी साधना में जुट जाते थे।

गोविन्ददास जी किसी को अपना पांव नहीं छूने देते थे। वे किसी को भभूत आदि भी नहीं देते थे। उनका कहना था कि व्यक्ति को अपने कर्म पर विश्वास रखना चाहिए। साधना कभी भी व्यर्थ नहीं जाती।

इस प्रकार यहाँ कुछ गिने चुने सन्तों-महात्माओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया। यदि आप ध्यान से देखें तो आज भी अनेक तपस्वी आपके आस-पास मिल जायेंगे। सच्चा साधक प्रदर्शन नहीं करता और न ही अपने बारे में कुछ बताता है। मेरी ऐसे दर्जनों महात्माओं से कुछ क्षणों के लिए भेंट हुई है जिनकी स्मृति आज तक बनी हुई है किन्तु उनका नाम और स्थान कुछ भी नहीं ज्ञात है।

मेरा अपना अनुभव है कि सच्चा महात्मा अपने बारे में कुछ नहीं बताता। वह मानव कल्याण को ही ईश्वर की सेवा मानता है। ऐसे ही एक महात्मा को मैं प्रणाम करके यह बता देना उचित समझता हूँ कि उन्होंने मुझे इतना ही समझाया था कि मानव की सेवा करने वाला ही ईश्वर का सच्चा पुजारी है।

अन्त में व्यास जी के संदर्भ में प्रसिद्ध उक्ति की चर्चा कर इस प्रकरण को यहीं समाप्त करना उचित होगा—

अष्टादश पुराणेपु
व्यासस्य वचनद्वयम्
परोपकाराय पुण्याय
पापाय परपीडनम्

अठारहो पुराण में व्यास जी ने केवल दो बातें कही हैं--परोपकार करना पुण्य है और दूसरे को कष्ट देना पाप है।

इस संदर्भ में अपने मित्र भाई जगदीशचन्द्र मिश्र द्वारा रचित एक गीत प्रस्तुत करना उचित समझता हूँ जिसे मैं बहुधा गुनगुनाया करता हूँ—

जिन्दगी है मिली साधना के लिए
बीत जाये न देखो सपन में कहीं

छोड़ तट को चली नाव मझधार में
कौन जाने कहाँ ज्वार भाटे मिलें
राम तक को विपिन में भटकना पड़ा
हाय कोमल चरण और कांटे मिले

फूल खिलते सदा अर्चना के लिए
सूख जायें न देखो चमन में कहीं

गजेन्द्र-मोक्ष स्तोत्रम्

श्रीशुक उवाच

एवं व्यवसितो बुद्धया समाधाय मनो हृदि ।
जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥१॥

गजेन्द्र उवाच

ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम् ।
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥२॥
यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम् ।
योऽस्मात परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयंभुवम् ॥३॥

यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं
क्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम् ।
अविद्धदृक् साक्ष्युभयं तदीक्षते,
स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥४॥

कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो,
लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु ।
तमस्तदाऽऽसीद्गहनं गभीरं,
यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः ॥५॥

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदुर्जन्तुः,
पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम् ।
यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो,
दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु ॥६॥

दिदृक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं,
विमुक्तसङ्गाः मुनयः सुसाधवः ।

चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने,
भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ॥७॥

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा,
न नामरूपे गुणदोष एव वा ।
तथापि लोकाप्यय-सम्भवाय,
यः स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥८॥

तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे ॥९॥

नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने ।
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥१०॥

सत्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता ।
नमः कैवल्यनाथाय निर्वाण-सुख-संविदे ॥११॥

नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे ।
निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥१२॥

क्षेत्रज्ञाय नमः स्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे ।
पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥१३॥

सर्वेन्द्रियगुणद्रष्टे सर्व-प्रत्ययहेतवे ।
असताच्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥१४॥

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय निष्कारणायद्भुतकारणाय ।
सर्वागमाम्नाय महार्णवाय नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥१५॥

गुणारणिच्छन्नचिदूष्मपाय

तत्क्षोभविस्फूर्जित मानसाय।
नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागम-,
स्वयं-प्रकाशाय नमस्करोमि ॥१६॥

मादृक् - प्रपन्नपशुपाश - विमोक्षणाय,
मुक्ताय भूरि-करुणाय नमोऽलयाय।
स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत,
प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥१७॥

आत्मात्मजाप्त-गृह-वित्त-जनेषु सक्तैः,
दुष्प्रापगाय गुण-सङ्ग-विवर्जिताय।
मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय,
ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥१८॥

यं धर्मकामार्थ-विमुक्ति-कामा,
भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति।
किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं,
करोतु मेऽदभ्र-दयो विमोक्षणम् ॥१९॥

एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं,
वाञ्छन्ति ये वै भगवत्-प्रपन्नाः।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमंगलं,
गायन्त आनन्द-समुद्र-मग्नाः ॥२०॥

तमक्षरं ब्रह्म परं परेश-
मव्यक्तमाध्यात्मिक-योग-गम्यम्।
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवाति-दूर-,
मनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥२१॥

यस्य ब्रह्मादयो देवा,
वेदा लोकाश्चराचराः ।
नाम-रूप-विभेदेन फल्ग्व्या,
च्च कलया कृताः ॥३२॥

यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो,
निर्यान्ति संयान्त्यसकृत्स्वरोचिषः ।
तथा यतोऽयं गुणसम्प्रवाहो,
बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः ॥२३॥

स वै न देवासुरमर्त्य-तिर्यङ्,
न स्त्री न षण्ढो न पुमान्न जन्तुः ।
नाय गुणः कर्म न सन्न,
चासन्निषेधशेषो जयतादशेषः ॥२४॥

जिजीविषे नाहमिहामुया,
किमन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ।
इच्छामि कालेन न यस्य विप्लव-,
वस्तस्यात्म-लोकावरणस्य मोक्षम् ॥२५॥

सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम् ।
विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥२६॥

योग-रन्धित-कर्माणो हृदि योग-विभाविते ।
योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम् ॥२७॥

नमो नमस्तुभ्यमसह्य-वेग-शक्ति-,
त्रयायाऽखिल धीगुणाय ।
प्रपन्न-पालाय दुरन्त-शक्तये,
कदिन्द्रियाणामनवाप्य वर्त्मने ॥२८॥

नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याहं-धिया हतम्।

तं दुरत्यय-माहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम्॥२९॥

श्रीशुक उवाच

एवं गजेन्द्रमुपवर्णित-निर्विषं,
ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिमानाः।
नैते यदोप-ससृपुर्निखिलात्मकत्वा,
त्तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत्॥३०॥

तं तद्वदार्त्तमुपलभ्य जगन्निवासः,
स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः।
छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमान,
श्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः॥३१॥

सोऽन्तःसरस्युरु-बलेन गृहीत आर्तो,
दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम्।
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रा,
न्नारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते॥३२॥

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य,
सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार।
ग्राहाद्विपाटित-मुखादरिणा, गजेन्द्रं
संपश्यतां हरिरमूमुचदुस्त्रियाणाम्॥३३॥

**

शिव-स्तुति

न भूमिर्न तोयं न तेजो न वायु
र्न खं नेन्द्रियं वा न तेषां समूहः।
अनैकान्तिकत्वात् सुषुप्त्येकसिद्ध-
स्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥१॥

न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्मा
न मे धारणाध्यानयोगादयोऽपि।
अनात्माश्रयाहं ममाध्यासहानात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥२॥

न माता पिता वा न देवा न लोका
न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रुवन्ति।
सुषुप्तौ निरस्तातिशून्यात्मकत्वात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोहऽहम् ॥३॥

न साङ्ख्यं न शैवं न तत्पाञ्चरात्रं
न जैनं न मीमांसकादेर्मतं वा।
विशिष्टानुभूत्या, विशुद्धात्मकत्वात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥४॥

न चोर्ध्वं न चाधो न चान्तर्न बाह्यं
न मध्मं न तिर्यङ् न पूर्वाऽपरा दिक्।
वियद्व्यापकत्वादखण्डैकरूप-
स्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥५॥

न शुक्लं न कृष्णं न रक्तं न पीतं
न कुब्जं न पीनं न ह्रस्वं न दीर्घम्
अरूपं तथा ज्योतिराकारकत्वात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥६॥

न शास्ता न शास्त्रं न शिष्यो न शिक्षा
न च त्वं न चाहं न चायं प्रपञ्चः ।
स्वरूपावबोधो विकल्पासहिष्णु-
स्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥७॥

न जाग्रन्न मे स्वप्नको वा सुषुप्ति-
र्न विश्वो न वा तैजसः प्राज्ञको वा ।
अविद्यात्मकत्वात् त्रयाणां, तुरीय-
स्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्ः ॥८॥

अपि व्यापकत्वाद्धितत्वप्रयोगात्
स्वतस्सिद्ध-भावादनन्याश्रयत्वत् ।
जगत्तुच्छमेतत् समस्तं तदन्यत्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥९॥

न चैकं तदन्यद् द्वितीयं कुतस्स्यात्
न वा केवलत्वं न चाऽकेवलत्वम् ।
न शून्यं न चाशून्य-मद्वैतकत्वात्
कथं सर्ववेदान्तसिद्धम् ब्रवीमि ॥१०॥

इति श्रीशङ्कराचार्यविरचिता दशश्लोकी ॥

**

श्रीहनुमान-चालीसा

श्रीगुरुचरन सरोज रज निज मनमुकुर सुधारि।
बरनौं रघुबरविमल जस जो दायक फल चारि॥
वुद्धिहीन तनु जानिकै सुमिरौं पवन कुमार।
वल वुधि विद्या देहु मोहि हरहु कलेश विकार॥

जय हनुमान ज्ञानगुनसागर। जय कपीस तिहुँलोक उजागर॥
रामदूत अतुलित वलधामा। अंजनिपुत्र पवनसुत नामा॥
महाबीर विक्रम बजरंगी। कुमति निवार सुमतिके संगी॥
कंचनवरन विराज सुवेसा। कानन कुन्डल कुञ्चित केसा॥
हाथ वज्र अरु ध्वजा बिराजै। कांधे मूंज-जनेऊ साजै॥
संकरसुवन केसरीनन्दन। तेज प्रताप महा जगवन्दन॥
विद्यावान गुनी अतिचातुर। राम-काज करिबे को आतुर॥
प्रभुचरित्र सुनिवेको रसिया। राम लखन सीता मनवसिया॥
सूक्ष्मरूप धरि सियहिं दिखावा। विकटरूप धरि लंक जरावा॥
भीमरूप धरि असुर सँहारे। रामचंद्र के काज संवारे॥

लाय सजीवन लखन जिआए। श्री रघुबीर हरषि उर लाए ॥
रघुपति कीन्हीं बहुत बड़ाई। कहा भरतसम तुम प्रिय भाई ॥
सहस बदन तुम्हरो जसगावैं। अस कहि श्रीपति कंठ लगावै ॥
सनकादिक ब्रह्मादि मुनिसा। नारद सारद सहित अहीसा ॥
यम कुबेर दिगपाल जहाँ ते। कविकोविद कहि सकैं कहाँ तें ॥
तुम उपकार सुग्रीवहिं कीन्हा। राम मिलाय राजपद दीन्हा ॥
तुम्हरो मंत्र विभीषण माना। लंकेश्वर भए सब जग जाना ॥
जुग सहस्र जोजन जो भानू। लील्यो ताहि मधुरफल जानू ॥
प्रभुमुद्रिका मेलि मुखमाहीं। जलधि लांघि गए अचरज नाही ॥
दुर्गम काज जगतके जेते। सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते ॥
रामदुआरे तुम रखवारे। होत न आज्ञा बिन पैंठारे ॥
सब सुख लहैं तुम्हारी सरना। तुम रक्षक काहूको डरना ॥
आपन तेज सम्हारौ आपै। तीनों लोक हाँकते काँपै ॥
भूत पिसाच निकट नहिं आवै। महावीर जव नाम सुनावै ॥
नाशै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा ॥
संकट तें हनुमान छुड़ावैं। मन क्रम बचन ध्यान जो लावै ॥
सबपर राम तपस्वी राजा। तिनके काज सकल तुम साजा ॥
और मनोरथ जो कोई लावैं। तासु अमिय जीवन फल पावै ॥
चारो युग परताप तुम्हारा। है परसिद्ध जगत उजियारा ॥
साधु सन्त के तुम रखवारे। असुर निकन्दन राम दुलारे ॥
अष्टसिद्धि नवनिधि के दाता। अस वर दीन्ह जानकी माता ॥
राम रसायन तुम्हरे पासा। सादर तुम रघुपति के दासा ॥

तुम्हरे भजन राम को भावै। जन्म-जन्म के दुख बिसरावैं ॥
अन्तकाल रघुपति पुर जाई। जहाँ जन्म हरि भक्त कहाई ॥
और देवता चित्त न धरई। हनुमत सेइ सर्व सुख करई ॥
संकट हरै मिटै सब पीरा। जो सुमिरत हनुमत बल बीरा ॥
जै जै जै हनुमान गोसाईं। कृपा करौ गुरु देव की नाईं ॥
यह शतबार पाठ कर जोई। छूटहि बन्दि महा सुख होई ॥
जो यह पढ़ै हनुमान चलीसा। होय सिद्ध साखी गौरीसा ॥
तुलसीदास सदा हरि चेरा। कीजै सदा हृदय महँ डेरा ॥

दोहा—पवन-तनय संकटहरन मंगलमूरति रूप।
रामलषन सीतासहित, हृदय बसहु सुरभूप ॥

**

'दुर्गासप्तशती' से

माँ दुर्गा स्तोत्र

卐

न मंत्रं नो यंत्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथा :।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम् ।।१।।

माँ ! मैं न मंत्र जानता हूँ, न यंत्र; अहो ! मुझे स्तुति का भी ज्ञान नहीं है। न आवाहन का पता है न ध्यान का। स्तोत्र और कथा की जानकारी नहीं है। न तो तुम्हारी मुद्राएं जानता हूँ और न मुझे व्याकुल होकर विलाप करना ही आता हैं। परंतु एक बात जानता हूँ, केवल तुम्हारा अनुसरण–तुम्हारे पीछे चलना। जो कि सब क्लेशों को–समस्त दुःख विपत्तियों को हर लेनेवाला है ।। १ ।।

विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत् ।
तदेतत् क्षंतव्यं जननि सकलोधारिणि शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ।।२।।

सबका उद्धार करनेवाली कल्याणी माँ ! मैं पूजा की विधि नहीं जानता, मेरे पास धन का भी अभाव है, मैं स्वभाव से भी आलसी हूँ

तथा मुझसे ठीक-ठीक पूजा का संपादन हो भी नहीं सकता। इन सब कारणों से तुम्हारे चरणों की सेवा में त्रुटि हो गयी है, उसे क्षमा करना, क्योंकि कुपुत्र का होना संभव है, किंतु कहीं भी कुमाता नहीं होती।

पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः संति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥३॥

माँ! इस पृथ्वी पर तुम्हारे सीधे-सादे पुत्र बहुत-से हैं, किन्तु उन सबमे मैं ही अत्यंत चपल तुम्हारा बालक हूं। मेरे जैसा चंचल कोई विरला ही होगा। शिवे! मेरा जो यह त्याग हुआ है, यह तुम्हारे लिए कदापि उचित नहीं है; क्योंकि संसार में कुपुत्र का होना संभव है, किंतु कहीं भी कुमाता नहीं होती ॥ ३ ॥

जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥४॥

जगदंब! माँ! मैंने तुम्हारे चरणों की सेवा कभी नहीं की। देवि! तुम्हें अधिक धन भी समर्पित नहीं किया; तथापि मुझ अधम पर जो तुम अनुपम स्नेह करती हो, इसका कारण यही है कि कहीं भी कुपुत्र पैदा हो सकता है, किंतु कहीं भी कुमाता नहीं होती ॥४॥

परित्यक्ता देवा विविधविधसेवाकुलतया
मया पंचाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालंबो लंबोदरजननि कं यामि शरणम् ॥५॥

गणेशजी को जन्म देने वाली माता पार्वती (अन्य देवताओं की
आराधना करते समय) मुझे नाना प्रकार की सेवाओं में व्यग्र रहना पड़ता था, इसलिए पचासी वर्ष से अधिक अवस्था बीत जाने पर मैंने देवताओ को छोड़ दिया है। अब उनको सेवा-पूजा मुझसे नहीं हो पाती। अतएव उनसे कुछ भी सहायता मिलने की आशा नहीं है। इस समय यदि तुम्हारी कृपा नहीं होगी तो मैं अवलंबरहित होकर किसकी शरण में जाऊंगा ॥५॥

श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातंको रंको विहरति चिरं कोटिकनकैः।
तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं
जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ ॥६॥

माता अपर्णा! तुम्हारे मंत्र का एक अक्षर भी कान में पड़ जाय तो उसका फल यह होता है कि मूर्ख चांडाल भी मधुपाक के समान मधुर वाणी का उच्चारण करने वाला उत्तम वक्ता हो जाता है। दीन मनुष्य भी करोडों स्वर्णमुद्राओं से संपन्न हो चिरकाल तक निर्भय विहार करता रहता है। जब मंत्र के एक अक्षर के श्रवण का ऐसा फल है तो जो लोग विधिपूर्वक जप मे लगे रहते हैं, उनके जप से प्राप्त होनेवाला उत्तम फल कैसा होगा? इसको कौन मनुष्य जान सकता है ॥६॥

चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कंठे भुजगपतिहारी पशुपतिः।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटी फलमिदम् ॥७॥

भवानी! जो अपने अंगों में चिता की राख-भभूत लपेटे रहते हैं, जिनका विष ही भोजन है, जो दिगंबरधारी (नग्न रहनेवाले) हैं, मस्तक

पर जटा और कंठ में नागराज वासुकि को हार के रूप में धारण करते

हैं तथा जिनके हाथ में कपाल (भिक्षापात्र) शोभा पाता है, ऐसे भूतनाथ पशुपति भी जो एकमात्र 'जगदीश' की पदवी धारण करते हैं, इसका क्या कारण है ? यह महत्व उन्हें कैसे मिला; यह केवल तुम्हारे पाणि-ग्रहण की परिपाटी का फल है; तुम्हारे साथ विवाह होने से ही भोलेनाथ योगिराज शिव का महत्व बढ़ गया ।।७।।

न मोक्षस्याकांक्षा भवविभववांछापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुख सुखेच्छापि न पुनः ।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः ।।८।।

मुख में चंद्रमा की शोभा धारण करने वाली माँ ! मुझे मोक्ष की इच्छा नहीं है, संसार के वैभव की अभिलाषा नहीं है, न विज्ञान की अपेक्षा है, न सुख की आकांक्षा । अतः तुमसे मेरी यही याचना है कि मेरा जन्म 'मृडानी, रुद्राणी, शिव, भवानी' इन नामों का जप करते हुए बीते ।।८।।

नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः
किं रूक्षचिंतनपरैर्न कृतं वचोभिः ।
श्यामे त्वमेव यदि किंचन मय्यनाथे
धत्से कृपामुचितमंव परं तवैव ।।९।।

मां श्यामा ! नाना प्रकार की पूजन-सामग्रियों से कभी विधिपूर्वक तुम्हारी आराधना मुझसे न हो सकी । सदा कठोर भाव का चिंतन करने वाली मेरी वाणी ने कौन-सा अपराध नहीं किया है ! फिर भी तुम स्वयं ही प्रयत्न करके मुझ अनाथ पर जो किंचित् कृपा-दृष्टि रखती हो, मां ! यह तुम्हारे ही योग्य है ! तुम्हारी-जैसी दयामयी माता ही मेरे-जैसे कुपुत्र को भी आश्रय दे सकती है ।।९।।

आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि ।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरंति ॥१०॥

माता दुर्गे ! करुणासिंधु महेश्वरी ! मैं विपत्तियों में फसकर आज जो तुम्हारा स्मरण करता हूं (पहले कभी नहीं करता रहा) इसे शठता न मान लेना ; क्योंकि भूख-प्यास से पीड़ित बालक माता का ही स्मरण करते हैं ॥ १० ॥

जगदंब विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि ।
अपराधपरंपरावृतं न हि माता समुपेक्षते सुतम् ॥ ११ ॥

जगदंब ! मुझ पर जो तुम्हारी पूर्ण कृपा बनी हुई है, इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है; पुत्र अपराध-पर-अपराध क्यों न करता जाता हो, फिर भी माता उसकी उपेक्षा नहीं करती ॥ ११ ॥

मत्समः पातकी नास्ति हापघ्नी त्वत्सम न हि ।
एवं ज्ञात्वा महादेवी यथायोग्यं तथा कुरु ॥ १२ ॥

महादेवी ! मेरे समान कोई पातकी नहीं है और तुम्हारे समान दूसरी कोई पापहारिणी नहीं है । ऐसा जानकर जो उचित जान पड़े, वह करो ॥ १२ ॥

षट्चक्र

योग चिन्तना में मानव-शरीर के भीतर षट्चक्रों एवं उसके अन्तर्गत निहित कुण्डलिनी शक्ति का स्थान है। सामान्यतया शरीर विज्ञान के अनुसार षटचक्र नाड़ी के समूह रूप में स्वीकृत हैं, पर योग में इस स्थूल स्थापना से परे सूक्ष्म स्वरूप का निर्देश है। षटचक्रों का ऐसा स्वरूप है जो सामान्य नेत्रों द्वारा नहीं देखा जा सकता। इसके लिये विशिष्ट प्रकार साधना द्वारा चक्रों के स्वरूप का बोध होता है। कुण्डलिनी शक्ति इन्हीं चक्रों के द्वारा क्रम से ऊर्ध्वगामी होती है और साधक सहस्रार में अपनी ही अंतस्थ शक्ति को स्थिर कर समरसता का प्रत्यभिज्ञान करता है। यह आवश्यक है कि शरीरस्थ विभिन्न चक्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया जाय। क्रमशः ये चक्र इस प्रकार हैं—

(१) मूलाधार चक्र
(२) स्वाधिष्ठान चक्र
(३) मणिपूरक चक्र
(४) अनाहत चक्र
(५) विशुद्ध चक्र
(६) आज्ञा चक्र

मानव शरीर के लिए आधार उनके पीठ के पीछे स्थित मेरुदण्ड है। यही रीढ की हड्डी है और इसका निर्माण तैंतीस अस्थि-खण्डों के जोड़ से बना हुआ है। इसका भीतरी हिस्सा पाइप की भाँति खोखला है और ऊपर से नीचे की ओर पतला होते हुए अन्त में नुकीला रूप ग्रहण कर

लेता है। इसी नुकीले भाग के आस-पास का स्थान "कन्द" नाम से अभिहित है। "कन्द" ही वह महत्वपूर्ण भाग है जिसमें जगदाधार महा-कुण्डलिनी शक्ति सुषुप्ता अवस्थाओं में उल्टा मुँह किये पड़ी रहती है। साधक अपनी साधना द्वारा इसे जाग्रत कर उसकी अधोमुखी गति को ऊर्ध्वमुखी करके ऊपर की ओर अग्रसर करता है।

मानव शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियों का उल्लेख है और इनमें भी मुख्य नाड़ियां चौदह हैं, फिर तीन मुख्य नाड़ियों का उल्लेख है, इनके नाम क्रमशः हैं—

(१) इड़ा
(२) पिंगला
(३) सुषुम्ना

इड़ा नाड़ी का स्थान मेरुदण्ड के बाहर बांयी ओर है और पिंगला नाड़ी का स्थान मेरुदण्ड के बाहर दाहिनी ओर है। सुषुम्ना नाड़ी मेरु-दण्ड के भीतर 'कन्द' भाग से प्रारम्भ होकर कपाल में स्थित सहस्रदल कमल तक जाती है। सुषुम्ना नाड़ी के भीतर भी तीन परत होती है:—

(१) वज्रा-नाड़ी।
(२) चित्रिणी-नाड़ी।
(३) ब्रह्म-नाड़ी।

योगी अपनी यौगिक साधना द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर ब्रह्म नाड़ी द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाकर पुनः लौटाता है।

मेरुदण्ड के भीतर की जो ब्रह्म नाड़ी है उसी में ६ कमलों की कल्पना है। यही षटचक्र है। प्रत्येक चक्र की स्थिति, बल संख्या, रंग, वर्ण आदि भिन्न-भिन्न हैं। इनका विशिष्ट परिचय इस प्रकार है—

(१) मूलाधार चक्र

इसकी स्थिति मेरुदण्ड के निचले भाग 'कन्द' प्रदेश से लगे गुदा एवं लिंग के मध्य स्थान में है। इसके कमल दल चार हैं उनका वर्ण या रंग रक्त है। इन चार दलों पर चार अक्षर वँ, शँ, षँ, सँ, की स्थिति मानी गयी है। इसके मध्य में स्वयभू लिंग है जिसके चारों ओर साढ़े तीन फेरे में लिपटी हुई सर्पाकार अपनी पूंछ को मुंह में दबाये सुप्त कुण्डलिनी शक्ति है। प्राणायाम द्वारा इसी सुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर ब्रह्मनाड़ी में प्रविष्ट कराकर ऊपर की ओर गतिशील किया जाता है।

(२) स्वाधिष्ठान चक्र

इसका स्थान लिंग स्थान के सामने है। इसमें ६ दलों की कल्पना है। इसका रंग पीत है। इसके दलों पर अक्षर है : बं, भं, मं, यं, रं, लं।

(३) मणिपूरक चक्र

यह मेरुदण्ड में नाभि-प्रदेश के सामने स्थित है। इसके दलों की संख्या दस है। इन दलों पर अक्षर हैं डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं; फं। इसका रंग नीलवर्ण है।

(४) अनाहत चक्र

इस चक्र की स्थिति हृदय-प्रदेश के सामने मानी गयी है। इसके दलों की संख्या बारह है। इनका वर्ण नील है। अक्षरों की स्थिति इस प्रकार है—कं, खं, गं, घं, ङं; चं, छं, जं, झं ञं, टं, ठं।

(५) विशुद्ध चक्र

यह चक्र कंठ-प्रदेश में स्थित है। इनके दलों पर १६ स्वरों 'अं' से 'अः' तक की स्थिति है। इसका वर्ण धूम्रवर्ण का है।

(६) आज्ञा चक्र

यह मेरुदण्ड के भीतर ब्रह्मनाड़ी में भ्रूमध्य स्थित है। इसके कमल का रंग श्वेत वर्ण का है। इसके दलों पर 'हं' से 'क्ष' तक के अक्षरों का स्थान नियत है।

अब तक ६ चक्रों का वर्णन हुआ। इन चक्रों के बाद मेरुदण्ड के ऊपरी सिरे पर सहस्र दल वाला सहस्र चक्र है, इसमें परम शिव विराजमान हैं। कुण्डलिनी शक्ति का संयोग परम शिव से लक्ष्य है। यही लय योग है।

कुण्डलिनी-शक्ति जागरण का योग गुरु के निर्देशन में ही अभ्यास करना चाहिए। केवल पुस्तकों के आधार पर अभ्यास करना हानिप्रद है। सिद्धियों के चक्कर में पुस्तकों के आधार पर अभ्यास करना अपने को खतरे में डालना है। योग साधना निष्काम साधना है। सुयोग्य गुरु का निर्देशन आवश्यक है।

योगासन

अग्रिम पृष्ठों में कुछ चुने हुए आसनों की विधियाँ तथा उनसे होने वाले लाभों की जानकारी दी गयी है। वैसे रोगों के अनुसार आसनों का निर्देश दिया जा सकता है किन्तु स्वस्थ व्यक्ति को चाहिए कि वह नियमित रूप से प्रातःकाल कम से कम चार-पाँच आसन अवश्य किया करे। आसनों का चयन इस प्रकार होना चाहिए ताकि शरीर के प्रत्येक अंग का व्यायाम हो जाय।

सामान्य तया अभ्यासी को आरंभ में ही कठिन आसनों के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। ऐसा करने से अनावश्यक रूप से परेशानी हो सकती है। साधारण आसनों के अभ्यास के बाद धीरे धीरे कठिन आसन किये जा सकते हैं। कठिन आसनों के लिए योग्य गुरु की सहायता अवश्य लें।

मेरी अपनी राय में यदि सामान्य आसनों से स्वास्थ्य लाभ किया जा सकता है तो कठिन आसन करने की उतनी आवश्यकता नहीं है।

समस्त प्रकार के व्यायामों की अपेक्षा योगासन लाभदायक सिद्ध होते हैं क्योंकि इनके प्रयोग से शरीर सदा स्फूर्त, स्वस्थ एव निरोग रहता है, मनोबल बढ़ता है, चित्त की वृत्तियां शान्त होती हैं और चारित्रिक उन्नयन होता है।

●

नियम

१—१२ वर्ष से कम आयु के बच्चे आसन न करें।

२—प्रतिदिन नियमित रूप से प्रातः या सायं खुली हवा में योगभ्यास करें।

३—आसन के पूर्व हल्का पेय (जल) ले सकते हैं। भोजन या जलपान आसन के आधे घण्टे बाद ग्रहण करें।

४—भोजनोपरान्त टहलने एवं वज्रासन छोड़ व्यायाम न करें।

५—भोजन करने और आसन करने में कम से कम ५ घण्टे का अन्तर हो।

६—स्वस्थ मनुष्य अपनी आवश्यकतानुसार व्यायाम का चुनाव कर सकते हैं। स्वस्थ रहने के लिये ५ तरह के आसन काफी हैं।

७—समतल भूमि या चौकी पर चटाई, दरी, चादर, या कम्बल बिछाकर स्वच्छ जांघियां और बनियान पहन कर आसन करें।

८—भोजन पौष्टिक, सुपाच्य एवं ताजा तथा उम्र के हिसाब से नियत समय पर करें।

९—भोजन सादा किया जाय उसमें मिर्च, मसाले न पड़े हों तो अच्छा है। यदि छोड़ें तो बहुत ही कम मात्रा में सब्जी उबली हुई अधिक गुणकारी है। आंटा चोकर सहित हो।

१०—भोजन कितनी बार करें? नियम-व्रत करने वाले एक बार युवक दो बार।

११–घी, तेल में तले हुए सामानों को नहीं खाना चाहिये।

१२–सप्ताह में एक दिन सूक्ष्म फलाहार करें, यदि सप्ताह में न हुआ तो १५ दिन में एक बार उपवास करना बहुत ही हितकर है।

१३–आसन करने वालों को प्रातः ४ बजे उठना चाहिए और १० बजे रात को सो जाना चाहिये।

१४–आसन के पूर्व और पश्चात् इष्टदेव, गुरु एवं माता-पिता को प्रणाम करके अभ्यास शुरू करें क्योंकि ये समस्त विघ्न नष्टकर सिद्धि में सहायक होते हैं।

१५–योगाभ्यास के लिये गुरु का निर्देश आवश्यक है।

१६–कोई भी आसन तीन बार से अधिक न करें और एक आसन करके दो तीन बार लम्बी सांस लें।

१७–अभ्यास धीरे-धीरे ध्यान पूर्वक करें अधिक ताकत न लगायें।

१८–रजस्वला होने पर स्त्रियों को चार, पांच दिन अन्य आसनों को बन्द कर केवल अर्धचन्द्रासन, ताड़ासन, पद्मासन ही करना चाहिए।

१ –गर्भ धारण करने पर तीन माह तक स्त्रियां आसन कर सकती है।

२०–आसन शान्त स्वभाव से करें, हंसना, चिन्ता, क्रोध करने पर आसन का प्रभाव बुरा पड़ता है।

२१–रात्रि में जागरण तथा अतिप्रवास इत्यादि सब तरह के अनाचार बन्द करने पर ही पूर्ण लाभ के अधिकारी हैं।

२२–वीर्य-दोष के मनुष्य इस आसन के व्यायाम में अपने आपको पूर्ण निर्दोष बना सकते हैं। ब्रह्मचर्य का पालन करें, और अर्धमत्सेन्द्रासन का अभ्यास करके वीर्य रक्षा करें। ऐसा करने से वे फिर पूर्ववत् वीर्ययुक्त हो सकते हैं।

●

लक्षणों के आधार पर आसनों का निर्देश

१—बदहजमी-पेट भरा भरा मालूम हो इस प्रकार के लक्षण हों तो ये आसन करें, पद्मासन, जानुशिरासन, सर्पासन।

२—सांस लेने में कष्ट, पैदल चलने में हफनी तथा खाँसी आना, साथ-साथ बलगम निकलना इसमें पद्मासन, मत्स्यासन, सर्वांगासन, जानुशिरासन, पवनमुक्तासन।

३—कब्ज, पाचन शक्ति कमजोर हो ऐसी हालत में अर्धकूर्मासन, शलभासन, वज्रासन, मत्स्यासन, पश्चिमोत्तानासन करने से लाभ होता है।

४—टट्टी के रास्ते से झिल्लीदार टट्टी हो, पेट में मरोड़ हो, बार-बार टट्टी जाने पर एक बूंद या थोड़ी टट्टी हो तो अर्धकुर्मासन, पवन-मुक्तासन, पश्चिमोत्तानासन, जानुशिरासन करें।

५—पेट में दर्द पैदा हो तो ये आसन करें—शशकासन, जानुशिरासन, धनुरासन, मृगासन।

६—गर्दन में सूजन तथा दर्द हो तो हलासन, एकपाद कन्धरासन, खगासन, यानासन, करें तो लाभ होगा।

७—कमर में दर्द हो तो तोलांगुलासन, धनुरासन, अर्धकूर्मासन, अर्ध-चन्द्रासन तथा सर्पासन करें, लाभ अवश्य ही होगा।

८—वीर्य में पतलापन होना यानी पानी जैसा हो, उसमें गाढ़ापान न हो और भोग के पहले ही पतन हो जावे यानो जनेन्द्रिय में अधिक उत्तेजना के कारण ध्वजभंग हो तो ऐसी हालत में निम्न आसन

करनें से उक्त दशा वाले रोग दूर हो जाते हैं-अर्धमत्सेन्द्रासन, पद्मासन, एकपादकन्धरासन, वज्रासन।

९—छाती में रह रह के दर्द हो तो ऐसी दशा में गोमुखासन, प्राणासन, पद्मासन, पवनमुक्तासन।

१०-घुटने में दर्द हो यहां तक कि चलने फिरने में लाचारी हो तो, महा बीरासन, बीरासन, धनुरासन, मण्डूकासन, ताड़ासन, एकपाद-कंधरासन।

११-शरीर का विशेप रूप से मोटापन हो तो यानासन, उष्ट्रासन, मृगासन, खगासन, पादहस्तासन।

१२-क्षण पर क्षण खांसी आना कफ के साथ खून आना, शरीर में मंद-मंद ज्वर हर समय लगा रहे, भोजन अच्छा न लगना आदि लक्षण हों तो मत्स्यासन, जानुशिरासन, तोलांगुलासन, ध्रुवासन, ताड़ासन करके लाभ उठावें।

१३-शरीर के जोड़ों में दर्द हो तो उस समय ये आसन करें, वज्रासन, उत्कटासन, मण्डूकासन, मृगासन।

१४-शरीर में एक तरफ का अंग शून्य सा हो जाय अथवा काम न करे तो उस हालत में मात्र सर्वांगासन करने से ही लाभ मिल जायेगा।

१५-शरीर में चर्म रोग जैसे सारे बदन पर दाने खुजलीदार से खुश्की अधिक खुजलाहट पैदा हो, लाल का होना, सर्वांगासन, धनुरासन, मृगासन, सर्पासन, हंसासन।

१६-जांघें विशेष रूप से मोटी हों यानी चलने फिरने में तकलीफ हो तो जानुशिरासन, खगासन, धनुरासन, पद्मासन, यानासन, पादहस्तासन।

१७–सर में अर्ध दर्द या सम्पूर्ण दर्द प्रातः या सायं अथवा दिनभर दर्द हो तो सर्वांगासन, शवासन, अर्धकूर्मासन, खगासन, गर्भासन ।

१८–शरीर में पीलापन आ जाये तथा आंखें पीली पड़ जायें पेशाव में पीलापन हल्दी की तरह हो तो उत्थित पद्मासन, हलासन, वज्रासन, सर्पासन ।

१९–जिसकी पाचन शक्ति कमजोर हो यानी किसी प्रकार का अन्न न हजम हो तो अर्धचन्द्रासन. शशकासन, वज्रासन, सर्पासन ।

२०–जिसकी हड्डी में बुखार लग गया हो किसी समय न उतरता हो तो उसे जानुशिरासन, पश्चिमोत्तानासन, गोमुखासन करने से लाभ प्राप्त होगा ।

२१–जिसके नाक से पानी निकलता हो साथ ही वदन में ऐंठन व दर्द हो यानी सर्दी पकड़ ली हो तो हलासन करें ।

२२–जो दिन भर डकार लिया करते हैं जैसा कि खाना खाने के बाद खास तौर पर सभी को आती है एक या दो बार, इसी प्रकार वे दिन भर क्षण पर क्षण डकार लिया करते हैं वे व्यक्ति वज्रासन, शलभासन, पवनमुक्तासन, तोलांगुलासन, भसिन करें ।

२३–पेशाब सम्बन्धी विकार पेशाब में कड़क, जलन व रुक-रुक के हो, पेशाब के आगे या पीछे सफेद, हल्दी जैसा निकले, चीनी जाना आदि हो तो उसमें जानुशिरासन, शलभासन ।

२४–ववासीर खूनी हो या वादी दोनों हालत में निम्न आसन से लाभ होगा–पश्चिमोत्तानासन, जानुशिरासन ।

२५–नेत्ररोग जैसे दूर की वस्तु साफ-साफ न दिखाई दे उस दशा में अर्धकूर्मासन, हलासन, सर्वांगासन करें ।

२६–जिसके पांव में बहुत ही ज्यादा दर्द हो यानी पैर फट रहा हो उत्तानपादासन, वज्रासन, कोनासन, महावीरासन ।

२७–जिसकी बोली में तुतलापन हो वे शवासन करें लाभ होगा।

२८–आंतों सम्बन्धी विकार, आंत का उतरना तथा आंतें सुचारु रूप से काम न करें उस दशा में खगासन, यानासन, उत्थित पद्मासन, गर्भासन, उत्कटासन।

२९–अंडवृद्धि या जिसका पोता बड़ा हो वे व्यक्ति निम्न आसन करें लाभ लें गोमुखासन, गरुड़ासन।

३०–जिसके टट्टी में छोटी-छोटी सफेद कीड़ी दिखाई पड़े तो वे सर्वांगासन, अर्धमत्सेन्द्रासन, उष्ट्रासन, जानुशिरासन, गर्भासन।

३१–जिसकी कमर या गर्दन टेढ़ी हो यानी कूबड़ापन हो तो वे ताड़ासन, सर्पासन, उष्ट्रासन, वीरासन, महावीरासन, गोमुखासन करें।

३२–गर्भाशय सम्बन्धी विकार, स्त्रियों के पेट में गर्भ (हमल) न रुके तथा बच्चेदानी में दोष होने पर शलभासन, सर्पासन, अर्धकूर्मासन, खगासन।

३३–स्त्रियों के पेट में दर्द हो तो योगमुद्रा, यानासन, शलभासन, पवनमुक्तासन।

३४–मासिक धर्म सम्बन्धी विकार माहवारी न होना, समय पर न हो, समय के अन्दर कई बार होना, माहवारी साफ न होना तो ऐसी हालत में महावीरासन, शलभासन, शशकासन, सर्पासन।

३५–जिसके नाड़े उखड़ जायें यानी टट्टी पतली हो, प्यास, ठंठा, पसीना, पेट में ऐठन हो सर्वप्रथम ये देखें कि हमारा नाड़ा उखड़ा है या नहीं। नाभि से लेकर सीने के एक ओर के बिन्दु को नाप लें फिर उसी नाप से सीने के दूसरी ओर का नाप करे अगर नाप में अंतर आता है तब तो समझे की नाड़ा उखड़ा है तो उस हालत में जानुशिरासन, उत्तानपदासन करें लाभ अवश्य ही होगा।

×

निर्देश

१. हलासन–स्त्रियों को गर्भावस्था में तथा मासिक के समय में में नहीं करना चाहिए ।

२. पवनमुक्तासन– " " "

३, सर्पासन– " " "

४. जानुशिरासन– " " "

५. पश्चिमोत्तानासन– " " "

६. मत्स्यासन – " " "

७. जिसकी आंतें उतरती हों उन्हें निम्न आसन नहीं करने चाहिए अर्धकूर्मासन, जानुशिरासन, योगमुद्रा, पश्चिमोत्तानासन,

८. जो स्त्रियां गर्भवती हों वे केवल ३ माह तक ही आसन कर सकती हैं गर्भधारण के बाद ।

९. मासिक के समय में केवल ताड़ासन, अर्धकूर्मासन, पद्मासन ही कर सकती हैं ।

१०. बच्चा पैदा होने के ५ माह बाद ही स्त्रियां आसन करना प्रारम्भ कर सकती हैं ।

×
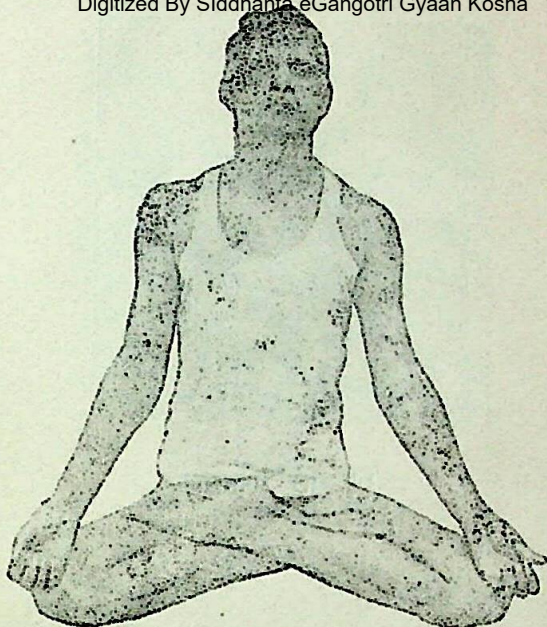
(१) पद्मासन

स्थिति–(क) दाहिना पैर बांयी जांघ पर रखें। (ख) बायां पैर मोड़कर दाहिनी जांघ पर रखें। (ग) हाथ के अंगूठे तर्जनी को लगाकर दोनों जांघों पर सीधे रखें। (अंगूठे के पास की अंगुली को ही तर्जनी कहते हैं। (घ) सिर सामने ठुड्ढी गले के नीचे लगी हो। (ड़) चित्त को स्थिर रखकर लंबी सांस भर कर जितनी देर तक आप रोक सकें उतनी देर तक रोकें फिर बाद में सांस को छोड़ दें। यह क्रिया दो या तीन बार करें।

लाभ—शरीर पुष्ट होता है। बुद्धि, वीर्यवृद्धि, सीना उठावदार होकर शक्ति बढ़ती है। रीढ़ लचीली, स्मरण शक्ति और विचार शुद्ध होते हैं। पाचन ठीक होता है।
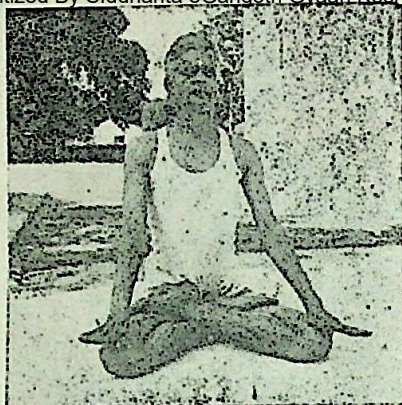
(२) अर्द्ध पद्मासन

स्थिति–दोनों पैरों को सीधा फैलाकर बैठ जायं। दाहिने पांव को बाईं जांघ पर और बायें पांव को दाहिनी जांघ पर रखें। हाथ की कलाइयों को दोनों घुटनों पर चित्र के अनुसार रखें। पैरों को आपस में बदलते रहें।

लाभ–इस आसन के नियमित अभ्यास से पद्मासन के लाभ होने के साथ ही शरीर में संचरित विद्युत तरंग बाहर आ जाती है। अभ्यासी इस समय अपने दोनों हथेलियों में इस तरंग का प्रभाव देख सकता है। यह आसन कफ, पित्त एवं वायु को सम कर पाचन शक्ति बढ़ाता है, रीढ़ सीधी करता है तथा टेढ़ापन दूर होता है। प्रसाद रस उत्पन्न करने वाली थाईराइड आदि ग्रन्थियां ठीक से काम करती हैं। प्राणायाम एवं ध्यान के लिए यह आसन विशेष उपयोगी है।
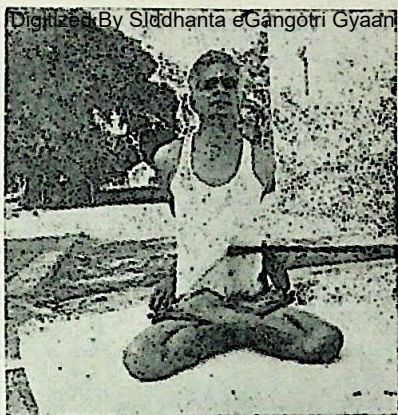
(३) बद्ध पद्मासन

स्थिति–पद्मासन में बैठकर हाथ पीछे से कैंचीनुमा ले जाकर दायें हाथ से दायें तथा बायें हाथ से बायें पैर का अंगूठा पकड़ें। दृष्टि क्रमशः पैर के पास भूमि पर मूत्रेन्द्रिय, नाभि, हृदय, कण्ठ, नासिकाग्र तथा कुछ अभ्यास के बाद भौंहों पर स्थिर करें। पैर के अंगूठे को छोड़कर पैर सामने फैला दें।

लाभ–पद्मासन आदि ध्यान के आसनों में स्थिरता आती है। हाथ, पैर, सीना, कमर आदि की मांसपेशियों को लाभ पहुँचाता है। विचार शक्ति, सद्भावना एवं स्नायु शक्ति बढ़ती है।
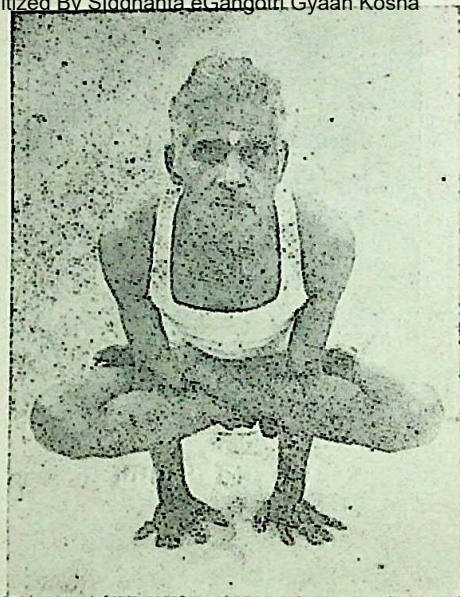
(४) कुक्कुटासन

स्थिति–पद्मासन लगाकर दोनों हाथों को दोनों जांघों और पिंडलियों के बीच से ले जाकर जमीन पर चित्रवत टिका दें। सारे शरीर का भार हाथों पर रहेगा। हाथों की अंगुलियाँ फैली रहेंगी।

लाभ–पद्मासन एवं उत्थित पद्मासन के सारे लाभ इससे प्राप्त होते हैं। जठराग्नि प्रदीप्त होती है, आलस्य दूर होकर स्फूर्ति आती है और नाड़ी शुद्ध होने में काफी मदद मिलती है।
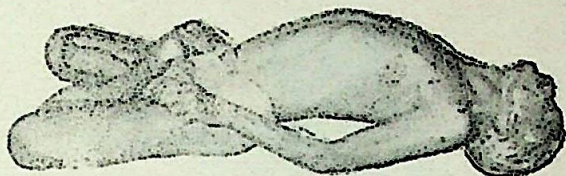
(५) मत्स्यासन

पद्मासन लगाकर बैठ जायें तत्पश्चात् दोनों हाथों के बलपर सिर के सिखा का भाग जमीन पर टिका दें। इस हालत में सिर और नितंब के बीच का भाग अर्ध धनुषाकार होकर जमीन से ऊपर उठेगा, ठुड्डी आकाश की ओर होगी। सीना ज्यादा से ज्यादा ऊपर तना रहेगा। सीने को ऊपर खीचने के पहले हाथों की अंगुलियां पैर के अगूठों को पकड़ लें फिर जांघ से लेकर घुटनों तक के अंग जमीन से स्पर्श करते रहेंगे।

लाभ—इससे पेट, अतड़ियां, हृदय, तिल्ली आमतौर पर प्रभावित होते हैं। सभी अंगों का व्यायाम हो जाता है। मेरुदंड लचीला होता है।
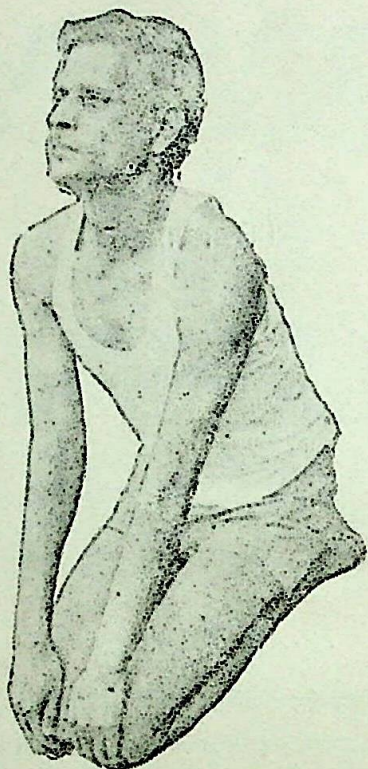
(६) बज्रासन

स्थिति–(क) दोनों पैरों के अंगूठे और एड़ियां जोड़कर एड़ियों पर बैठें। (ख) दोनों हाथों के तलवे घुटनों पर रखें। (ग) सिर सामने, पीठ सीधी तथा हाथ सीधा रखें।

लाभ—रीढ़, कमर, पेट, जांघों के विकार दूर होते हैं। हाजमा ठीक करके मलशुद्धि होती है। भोजन के बाद यह आसन कर सकते हैं। जब अपच सा मालूम हो, तो केवल भोजन के बाद यही किया जा सकता है। अन्य आसन नहीं करना चाहिए। प्रातः विस्तर से उठते ही कर लेने से सुस्ती मिट जाती है।

(७) गर्भासन

स्थिति--पद्मासन में होकर के दोनों पांवों के पंजे भीतर रहें। दोनों जांघ और पिण्डलियों के बीच में से दोनों हाथ कुहनी तक निकालकर अपने हाथों की अगुलियों से अपने कान को पकड़े।

लाभ—आंतों के विकार दूर होते हैं। नाड़ी शुद्धि में सहायता मिलती है। क्षुधा प्रदीपन होता है।
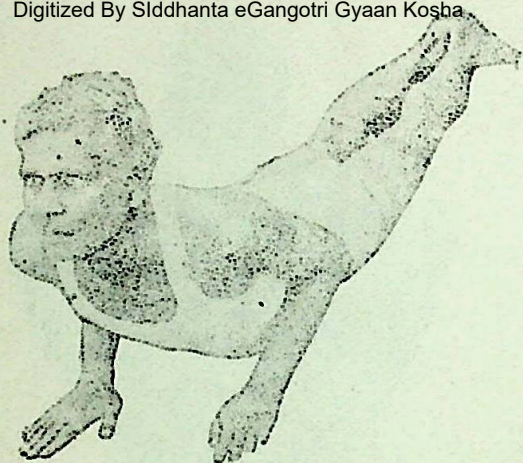
(८) सर्पासन

स्थिति–पट सोकर, दोनों हाथ पसली के पास जमीन पर आधे रखें। उगलियां सामने रहें। सिर से लेकर छाती तक का भाग सांप के फन जैसा उठा रखें। कमर से नीचे का भाग पांव समेत जमीन से टिका रहेगा।

लाभ—सीना, पेट, कमर, आमाशय, मलाशय, मूत्राशय, वीर्यरक्षण के लिए यह एक मुख्य आसन है।
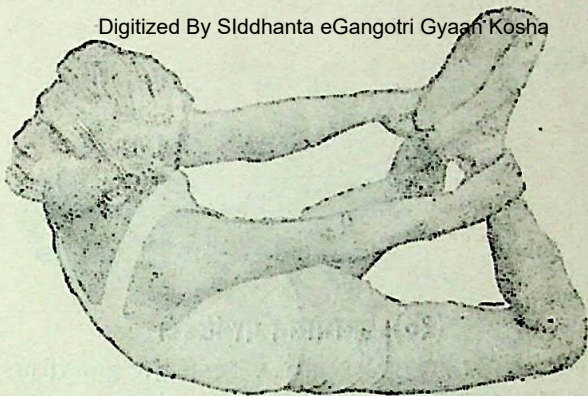
(६) धनुरासन

पेट जमीन से लगाकर भूमि पर सीधा सोकर पीछे से अपने हाथों से पावों को एंडी के नीचे पकड़ लीजिए। अब नाभि के आस पास के भाग जमीन पर रखकर और बाकी सब शरीर ऊपर कीजिए। हाथों से पांवों को भली प्रकार खींच लीजिए।

लाभ—हाथ, पांव, कमर, सीना, पेट, आमाशय, आतें आदि की बीमारियां दूर होती हैं। चर्बी कम होती है। गठन ठिकाने पर होती है।

नोट—यह आसन केवल प्रातः काल करना चाहिए क्योंकि उस समय पेट पूरी तरह खाली रहता है।
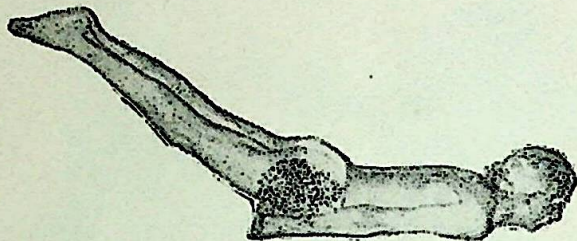
(१०) शलभासन या टिड्डी

स्थिति—पेट के बल लेट कर नाभि के दोनों ओर हाथ रखिए और नाभि के आस पास का भाग जमीन पर रहेगा। पांव ऊपर उठाइए।

लाभ—पेट पतला होता है। यकृत, प्लीहा, मलमूत्रेन्द्रियाँ, कमर, बद्ध कोष्ठ, रीढ़ और स्नायु ठीक हो जाते हैं।

(११) खगासन

पद्मासन लगाकर पेट के बल लेट जायें। दोनों हाथों की हथेलिय को जमीन में कोहनी के पास ले जायें इसके बाद गला छाती को जमीनों से ऊपर उठावें दृष्टि आकाश की ओर रखें, सांस को जबतक रोक सकें तब तक रोकें बाद में धीरे-धीरे पहले छाती, सिर जमीन पर रखकर हाथों को सीधा कर सांस को निकाल कर शरीर को शिथिल कर दें।

लाभ—इस आसन से सिर, गला, छाती, पेट इत्यादि के रोग दूर हो जाते हैं। मधुमेह, पेट की गैस. दमा की बीमारी भी ठीक हो जाती है। पेट हल्का और छाती चौड़ी होती है।
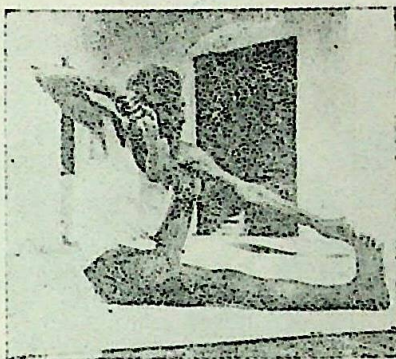
(१२) आकर्ण धनुरासन

स्थिति–दोनों पैरों को फैलाकर बैठें। गर्दन सीध में रखते हुए दाहिने हाथ से बायें पैर का अंगूठा पकड़कर दाहिने कान के पास लायें। बायें हाथ से दाहिने पैर के अंगूठे को पकड़ें। पुनः यही क्रिया हाथ और पैर बदलकर करें।

लाभ–सभी जोड़ों को ढीला करना इस आसन का प्रमुख कार्य है। पैर, कमर, पेट, घुटनों एवं जांघों के स्नायु बलिष्ट होते हैं। गठिया के लिए यह बेजोड़ आसन है।
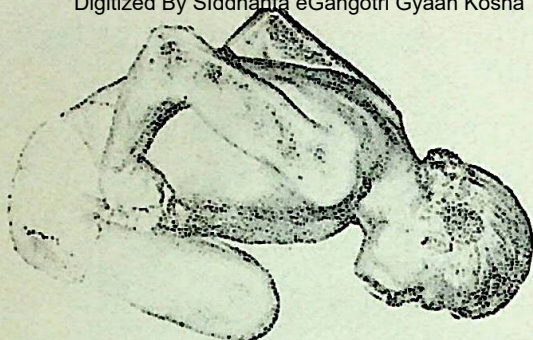
(१३) योग-मुद्रा

स्थिति–पद्मासन लगाकर बैठ जांय, फिर दोनों हाथों को समेटकर मुट्ठी बांधकर हथेली के पिछले भाग को ैरों के तलवे पर रखें। सामने झुकें तथा सिर को जमीन से सटाएं। ऐसा करते समय ध्यान रखें कि जांघें और नितंब जमीन पर स्पर्श करती रहेंगी। दोनों बांहें बगल शरीर से दबाये रहें तथा कोहनी कोण का रूप बनाती रहे। दूसरी विधि दोनों हाथों को पीछे जहां रीढ़ तथा कमर मिलती हो, वहीं पर ले जायें हाथ की अंगुलियां आपस में कैंची नुमा फसाकर ब कर लें तब माथे को जमीन से लगावें।

लाभ—बुद्धि तीव्र होती है। रक्त प्रवाह में गति आती है। दिमाक प्रफुल्लित होता है। पेड़ू, पेट तथा आंत के रोग दूर हो जाते हैं। हृदय एवं फेफड़े ठीक काम करते हैं, कुष्ठ तथा यौन-व्याधियों से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।
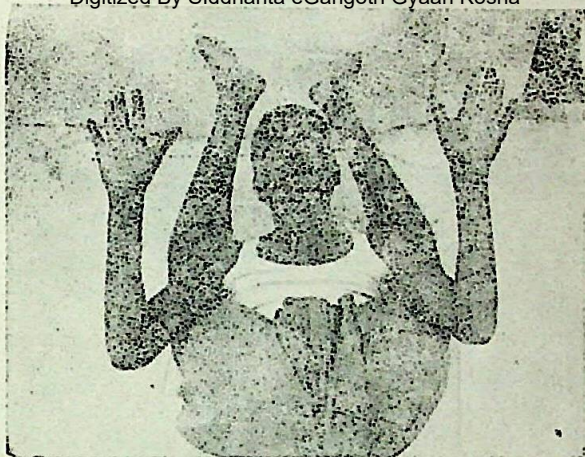
(१४) विकसित कमलासन

स्थिति–तितंब के सहारे बैठकर दोनों पैरों को मोड़ कर सिर के ऊपर ले जायें और उक्त चित्र अनुसार दोनों हाथों को जांघों के नीचे से ऊपर की ओर ले जायें। हथेलियों एवं पाद तलवों को फैलाकर गर्दन सीधी रखें।

लाभ–मेरुदण्ड तथा कटि आदि भाग दृढ़ होते हैं गर्दन के विकारों को दूर करता है।
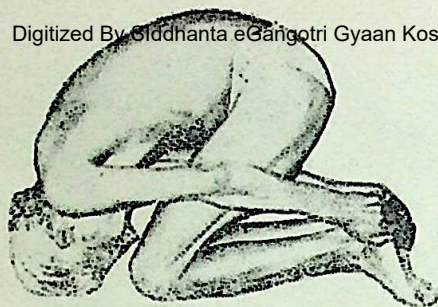
(१५) शशकासन

स्थिति—वज्रासन में वैठ जायें फिर दोनों हाथों के पंजे से एंड़ियों को इस तरह पकड़ें कि अंगुलियाँ पैर के तलवों पर तथा अंगूठे पैर के ऊपरी भाग पर स्थिर रहें। इसके वाद पावों, घुटनों तथा पिंडलियों को वज्रासन में रखें तथा नितम्ब को ऊपर उठाते हुए सामने झुकें। ललाट को घुटने के पास जमीन से स्पर्श करें। दोनों बाहों को तनी तथा सीधी रखना चाहिए।

लाभ—थाईराइड की ग्रन्थियाँ ठीक से काम करती हैं। पाचन शक्ति बढ़ती है। प्लीहा तथा यकृत स्वस्थ रहते हुए रीढ़ लचीली होती है।

(१६) गोमुखासन

स्थिति—जमीन पर सुखपूर्वक बैठ जायें बांए पैर की एड़ी को दाहिनी जांघ के बैठक स्थान यानी नितंब भाग की जड़ में ले जांय तथा वहीं पर टिका दें। दाहिने पांव को मोड़कर उसका घुटना बांयें घुटने के ठीक ऊपर रखें। अब कमर से लेकर सिर तक सीधा रखते हुए दोनों हाथों के पंजों को आपस में मिलाकर दांयीं टांग के घुटने को सरलता से पकड़ लें। क्रमशः टांगों को बदलें।

लाभ—गठिया, अण्डकोष, मूत्राशय संबंधी रोग दूर हो जाते हैं। जिन्हें नींद न आती रहे इस आसन को १५ मिनट करके और १० मिनट बाद भोजन करें फिर सो जायें तो गाढ़ी नींद आवेगी।

(१३) महावीरासन

स्थिति-सीधे खड़े हों फिर दाहिने पांव को लगभग ३ फुट आगे ले जायें। वांयां पैर पीछे पंजे के वल जमीन पर रखें। दोनों हाथों की मुट्ठियों को बन्द करके ऊपर उठाते हुए कंधों की ओर लावें दोनों हाथ विल्कुल सीधा आकाश की ओर रहे। मुह बन्द नाक से साँस लें। अंग हर हालत में अपनी अपनी ओर तने रहेंगे।

लाभ—छाती चौड़ी होती है। हाथ पाँव में शक्ति बढ़ती है। कमर पतली होती है। पाचन शक्ति ठीक होती है। माहवारी न आती हो तो आने लगती है।
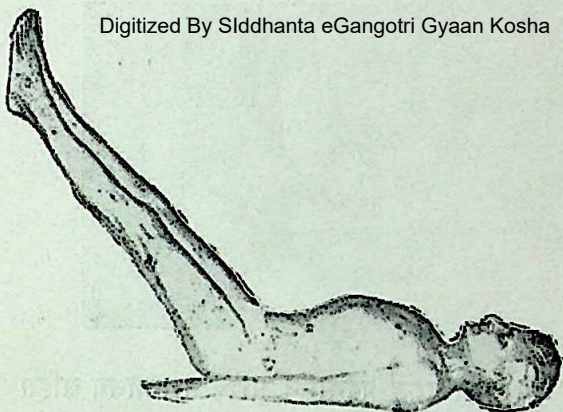
(१८) उत्तानपादासन

स्थिति–भूमि पर चित्त सो जायें। दोनों हाथों को शरीर से सटाकर पैर की तरफ जमीन पर पट रखें। दोनों पैरों के घुटनों, एड़ियों और अंगूठों को सटा लें। अब श्वांस को शरीर में भर कर धीरे-धीरे पैरों को उठावें क़रीब १-१/२ फुट ऊचाई तक फिर धीरे-धीरे नीचे ले आयें। जब जमीन पर पैर रखें फिर शरीर को ढीला करने के बाद श्वांस को धीरे-धीरे निकालना प्रारम्भ करें।

लाभ—स्त्री के गुप्त अंगों को निरोग बनाता है। विचारों को पवित्र बनाता है। अजीर्ण दूर होता है। भूख लगती है। चर्बी नहीं बढ़ती है, आमाशय ठीक करता है, हर्निया रोग दूर होता है, कमर में शक्ति बढ़ती है।

(१९) अर्द्धबद्ध पद्मासन पश्चिमोत्तानासन सहित

स्थिति–पैरों को फैलाकर दायें पैर की एड़ी बायें पैर के जांघ मूल तक ले जायं। दाहिने हाथ से दाहिने तथा बायें हाथ से बायें पैर का अंगूठा पकड़ें। अब गर्दन झुकाकर फैले हुए पैर के घुटने को नाक से छुएं। बायें हाथ की कुहनी जमीन पर टिका दें। इसी प्रकार दूसरा पैर बदलकर यही आसन करना चाहिए।

लाभ–इस आसन से वीर्य सबन्धी दोष नष्ट होते हैं और रुकी हुई वायु तत्काल बाहर निकल जाती है।

(२०) जानुशिरासन

स्थिति-भूमि पर बैठकर पैरों को सीधे सामने फैला दें तत्पश्चात दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर एंड़ी को गुदा और अण्डकोश के मध्य भाग में लगावें और साथ वाली टाँग की जाँघ के नीचे तलवे को सटावें। फिर दोनों हाथों से बांये पैर के अंगूठे को पकड़ें और सिर को झुकाकर नाक घुटने पर रखें। ध्यान रहे कि दोदों हाथों की केहुनियाँ तथा बायाँ पैर सीध्र रहे और जमीन को स्पर्श करता रहे जैसा कि चित्र में है। इस आसन को हेर फेरकर कर सकते हैं।

लाभ—जिनके पेशाव से चीनी आती है. उन्हें इस आसन से बहुत ही लाभ होगा। तिल्ली, यकृत और प्लीहा ठीक काम करते हैं। दमा, साधारण ज्वर, तपेदिक, हृदय की खराबियाँ दूर होती हैं। इससे भूख बढ़ती है।
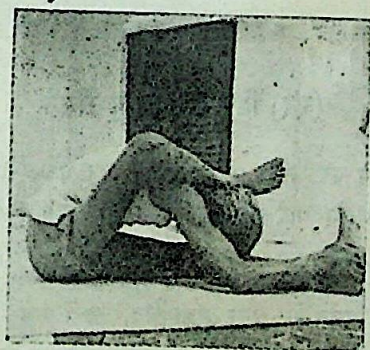
(२१) एकपाद कन्धरासन सहित जानु सिरासन

स्थिति–दोनों पैरों को फैलाकर बैठें। अब पहले दाहिने पैर को कन्धे के ऊपर लेजाकर दोनों हाथों से फैले हुए पैर के पंजे को पकड़ने के साथ ही नासिक तथा सिर को घुटने पर टिका दें। इसी प्रकार दूसरे पैर से भी करें।

लाभ–इसके अभ्यास से पांव, गर्दन, सीना आदि वलिष्ट होते हैं। पराक्रम बढ़ता है तथा वात एवं कफ का समन होता है। टाँगे अति दृढ़ हो जाती हैं।

(२२) द्विपाद शयन कूर्मासन

स्थिति–भूमि पर सीधे सोकर दोनों पैर गर्दन के पीछे ले जाकर सिर ऊपर उठाते हुए गर्दन बाहर कर लें। अब दोनों हाथ जोड़कर ईश्वर का ध्यान करें।

लाभ–इस आसन से बढ़ा हुआ मेद, चर्बी कम होती है, पाचन क्रिया ठीक होती है। हार्निया तथा बवासीर ठीक हो जाता है। नियमित करने वालों को ये रोग नहीं होते।
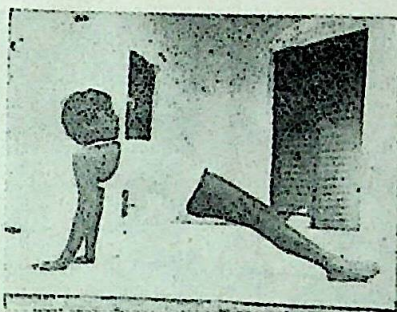
(२३) नाभि दर्शनासन

स्थिति–चित्र के अनुसार पावों को शरीर के सीध में फैलाते हुए दोनों हाथों को पूरी तरह फैलाकर पीछे की ओर टिका दें। हथेलियाँ पीछे की ओर खुली रहेंगी और दृष्टि नाभि पर रहेगी पाँव के पंजे जमीन पर तने रहेंगे।

लाभ–इससे संपूर्ण शरीर के रक्त का संचार ठीक होता है। मधुमेह आदि रोग नहीं होते। हाथों में शक्ति आती है।
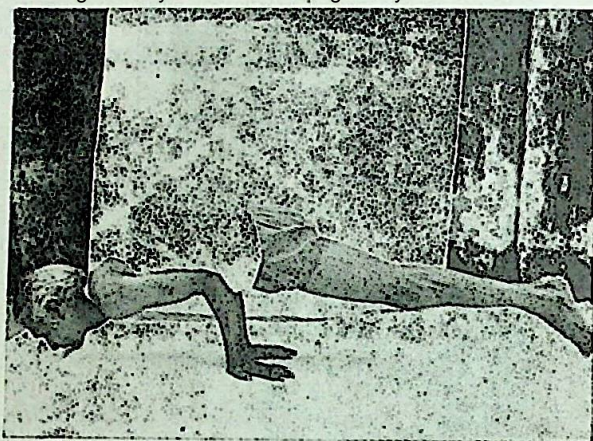
(२४) मयूरासन

स्थिति–दोनों हाथों के पंजे जमीन पर रखें और कुहनियों को नाभि के पास लगालें। अब दोनों पाँवों को ऊपर उठाते हुए पूरे शरीर को सीध में करें। किंचित समय स्थिर रहकर छाती और मुख को नीचे की ओर झुकायें।

लाभ–भूख लगती है, पेट साफ होता है। गुल्म उदर आदि रोगों को दूर करता है। वात, पित्त आदि दोषों को शमन कर शरीर को पुष्ट बनाता है। हाथ मजबूत होते हैं।
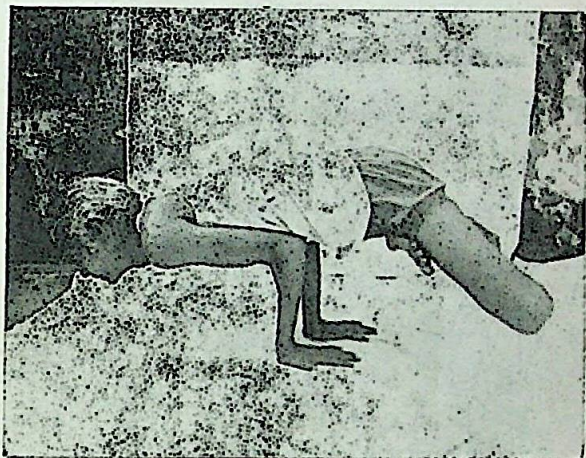
(२५) मयूरी आसन

स्थिति–पद्मासन लगाकर बैठने के वाद दोनों हाथों की हथेलियों को चित्र के अनुरूप सामने भूमि पर रखें और नाभि के पास कुहनियों को टिकाकर शरीर का सारा भार हाथों पर डालते हुए झुक कर पैरों को उठा लें। गर्दन एवं मेरुदण्ड को सीध में रखते हुए सन्तुलन बनाये रहें।

लाभ–इस आसन से उदर पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। पाचन संस्थान ठीक होता है एवं सुषुम्ना नाड़ी गतिशील होती है।

(२६) एक पाद कन्धरासन

स्थिति—प्रथम में चौकसी मारकर बैठिए। इसके बाद बांया पैर मोड़कर एंड़ी गुदे से आगे तथा दाहिनी जांघ के नीचे हो। दाहिना पैर एक हाथ से या दोनों हाथ से पकड़कर पीछे से लेकर गर्दन पर रखें तथा हाथ को हटा लें। दोनों हाथ सीने के सामने प्रणाम मुद्रा में जोड़ लें। इसी प्रकार दूसरे पैर से अभ्यास करें। एक दिन में भली प्रकार से नहीं होगा बहुत ही धीरे-धीरे अभ्यास करें। समय—२ मिनट से अधिक न हो।

लाभ—इस आसन से जांघों तथा घुटनों के विकार दूर होते हैं। वीर्य दोष नष्ट होता है। गर्दन, गला, जांघों के स्नायु कार्यक्षम होते हैं, विकृत वायु बाहर निकलती है और चेहरे पर तेज रहता है।

(२७) उत्थित एकपाद कन्धरासन उड्डियान सहिय

स्थिति–दोनों पैरों पर खड़े होकर दाहिना पैर कन्धे पर ले जाइए। अब दोनों हाथों को पंख की तरह सीध में फैलाते हुए पाँव की एँड़ी को उठाकर पंजे के बल खड़े होने का प्रयास करें।

लाभ–ग्रीवा और वक्षस्थल बलवान होते है पराक्रम एवं पौरुष बढ़ता है। वात-कफ दूर होता है तथा मुखमण्डल तेजयुक्त होता है।
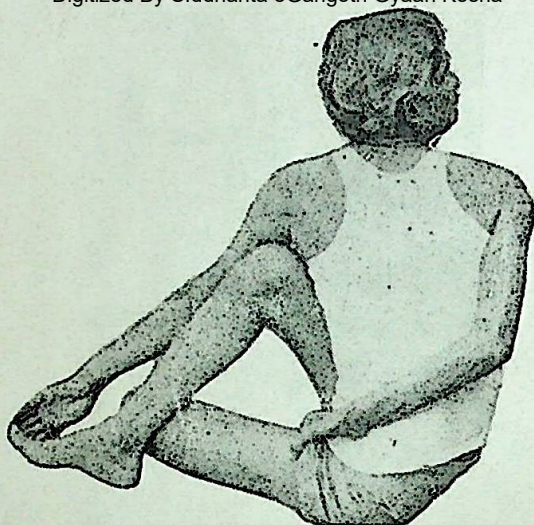
(२८) अर्धमत्सेन्द्रासन

स्थिति–बायें पांव की एंड़ी गुदा और अंडकोश के बीच में रखें और दायां पैर बायें घुटने के पास चित्त पंजा भूमि पर लगा के रखें फिर बांये हाथ की काँख से दाहिना घुटना दबाकर दाहिने पांव का अंगूठा पकड़ें। दायां हाथ पीछे से लेकर बांयी जांघ पर औंधा रखें और अपना मुख तथा अंग पीछे की ओर फेर कर नासाग्र में करें।

लाभ—इस आसन से पेट, कमर, पीठ, हाथ, पांव, गला, भुजा, नाभि के नीचे के भागों का तथा छाती के स्नायुओं का अच्छा तनाव होता है। इसलिए इतने भागों पर इसके अभ्यास से सुपरिणाम होता है।

(२६) अर्ध-चन्द्रासन

स्थिति–दोनों पांव मिलाकर सीधे खड़े हो जायें। दोनों हाथों की हथेलियाँ खुली हों तथा अंगूठे आपस में पकड़कर हथेलियों को सीधे करें इसके बाद दांयीं ओर धीरे-धीरे झुकना शुरू करें। बाहों से सिर को दबाये हुए झुकावें जहाँ तक झुक सके। इस बात का ध्यान रखें कि इस तरह करने में एंड़ियाँ जमीन न छोड़ें साथ ही धड़ सामने तथा पीछे न झुके।

लाभ—इस आसन को करने से शरीर में स्फूर्ति आती है। कुबड़ापन, मूत्राशय ठीक हो जाता है। मस्तिष्क को भी बल मिलता है। आंतें ठीक काम करती हैं। रीढ़ और पीठ की हड्डियां लचीली होती हैं।
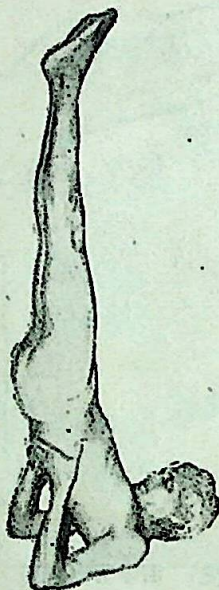
(३०) सर्वांगासन

इसे आसनों का राजा भी कहा गया है। पहले उत्तानापादासन में होकर पाँव के पंजे को सटाते हुए सामने की ओर तानकर टाँगों को धीरे-धीरे ऊपर उठाते जाँय। जब पंजे आकाश को देखने लगें तब कमर को उठाना शुरू करें। प्रारंभ में कमर को हाथ का सहारा दीजिए परन्तु कुछ समय बाद जब अभ्यास हो जाय तो कमर से हाथों का सहारा हटाकर अभ्यास करें तो बहुत ही उत्तम है। जब पाँव आकाश देखेगा तब उस समय सारा शीरर कन्धों पर ही रहेगा। सिर कन्धा जमीन पर तथा ठोड़ी जाकर के गले के नीचे भाग में जम जावेगी। वापस लाते समय धीरे-धीरे एक-एक भाग लावें जब टांगें जमीन पर आ जायें तब एड़ियों को खोलकर शव आसन में हो जायें।

लाभ—पेट, छाती, गर्दन के विकार दूर होते हैं। रीढ़ की हड्डी में लचकाव आता है, कब्ज को दूर करके, शरीर में तेज वीर्य की वृद्धि होती है। रक्त दोष दूर हो जाते हैं।

(३१) पश्चिमोत्तानासन

जमीन पर बैठकर दोनों पैरों को सीधा फैलावें बाद में दोनों हाथों से दोनों अंगूठों को पकड़ें सिर दोनों घुटनों के बीच में नाँक तथा सिर घुटनों को स्पर्श करेंगे तथा दोनों कोहनियों को जमीन से लगावें। इस दशा में पैर तथा घुटने जमीन में रहेंगे ऊपर नहीं उठेंगे। सोना जांघों के ऊपरी हिस्से को छूता रहेगा। जब सिर को घुटनों की ओर ले चलें तभी श्वास को बाहर निफाल दें। श्वास तभी लें जब सिर घुटने से कोहियां जमीन से सट जायं।

लाभ–इस आसन से पेट का विकार दूर हो जाता है। यकृत, प्लीहा ठीक रहते हैं। पेट की चर्बी कम हो जाती है। भूख खूब लगती है।
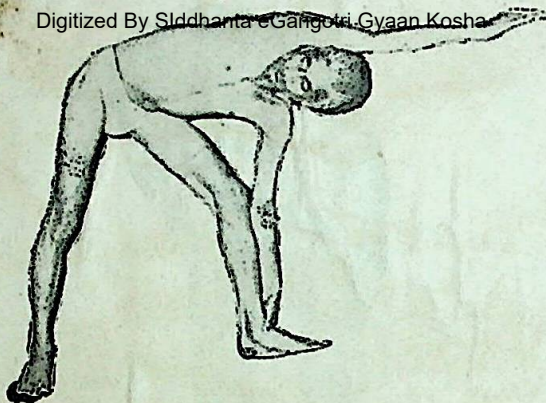
(३२) कोनासन

सीधे खडे होकर दोनों पैरों में लगभग दो फिट की दूरी हो। कान पर भुजदंड दबाकर हाथ को तानें। एक पाँव बगल की ओर इतना मोड़िए कि समकोण बन जाय। जो पांव मोड़ा हो उसी तरफ के हाथ उसी पैर पर रखें। जो हाथ और पैर को स्पर्श करता है वह हाथ बिलकुल सीधा रहे जैसा कि चित्र में दिया गया है। इसी प्रकार दूसरी तरफ से भी किया जाता है।

लाभ—इस आसन से हाथ पांव में बल बढ़ता है। पेट की चर्बी कम होती है। नाड़ीतंत्र में चेतना पैदा होती है, कमर घुटनों जांघों में जाने वाली नसों में होने वाले विकार दूर होते हैं। (साइटिका) मेरुदंड में लचक बढ़ती है।

(३३) ध्रुवासन

सीधे जमीन पर खड़े हो जांय तत्पश्चात दाहिने पांव को मोड़कर उसी पांव की बांई जांघ के मूल भाग पर जमा दें फिर सांस को शरीर में भर कर दोनों हाथ जोड़ते हुए छाती पर लगावें। दृष्टि सामने रखें या बन्द भी रख सकते हैं। श्वास जब तक रोक सकें तभी तक रोकें सुगमता के साथ बाद में हाथ को छोड़ें फिर पांव को जमीन पर रखने के साथ साथ सांस को बाहर धीरे-धीरे निकाल दें। यही क्रिया दूसर पांव से क्रमानुसार करें।

लाभ—चंचल मन स्थिर होता है, घुटनों तथा पांवों के बिकार दूर कर यह आसन शक्ति का संचार करता है। इससे सिद्धियाँ शीघ्र एवं सुगमता से प्राप्त होती हैं। इस आसन को नदी के तट पर करने से अद्भूत आनन्द आता है।

(३४) शवासन।प्रेतासन

यदि जमीन साफ हो तो कपड़ा या चटाई बिछाकर पीठ के बल लेट जायें। फिर रीढ़ और पैर सीध में हों, (फैले हुए हों किसी देवी, देवता का मन में स्मरण करके चिन्ताओं से मुक्त हों। फिर पूरे शरीर को ढीला छोड़ दें। जैसा कि विस्तरे पर सोने के लिए किसी भी अग पर कोई दवाव नहीं पड़ना चाहिए। इस आसन को पूरे आसन कर लेने के बाद दो तीन मिनट तक करें।

लाभ—सभी नसों में खून और बिजली का प्रवाह होता है। बुद्धि का विकास होता है। थकावट दूर होती है! शरीर सुख का अनुभव करता है और मन को शान्ति मिलता है। तुतलाने आदि रोग को दूर करता है। साथ ही अन्य क्रियाओं में मदद करता है।

आस्था-पत्र

यहाँ मैं कुछ चुने हुए व्यक्तियों के आस्था-पत्र के कुछ अंश प्रस्तुत कर रहा हूँ जिन्होंने मेरे निर्देशन में योगाभ्यास कर अपने कठिन रोगों से मुक्ति पायी है। इसे प्रकाशित करने का मेरा लक्ष्य आत्म स्तुति नहीं है बल्कि इसके माध्यम से मैं रोगाक्रान्त निराश व्यक्ति को यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि यदि वह विश्वास पूर्वक योग की शरण में जाय तो निश्चित ही लाभ होगा।

इसी लिए जब कोई प्राणी आसनों से रोगमुक्त होकर मेरी प्रशस्ति करने लगता है तो मैं यही मानता हूँ और कहता भी हूँ कि यह कार्य मेरा नहीं, साधना का है। सत्य तो यह है कि मैं स्वयं साधना का अनुचर हूँ।

(एक)

मैंने गुरुदेव श्री बलिराज सिंह के निर्देशन में योगाभ्यास किया और इससे काफी लाभ हुआ। शरीर चुस्त हो गया और हमारा बजन जो अधिक था, कम हो गया।

मुझे हर प्रकार का लाभ पहुंचा है और अब मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। योग के प्रति मेरी पूर्ण आस्था एवं योगिराज के प्रति शुभ कामना है।

जगदीशचन्द्र जैन
जैन ट्रेडर्स, राजादरवाजा,
वाराणसी

(दो)

योगिराज श्री बलिराज सिंह जी इस युग के एक कुशल एवं योग्य योगासन मर्मज्ञ हैं। मैं वायु रोग से बुरी तरह पीड़ित था किन्तु गुरुदेव के बताये योगासनों से मुझे बहुत आराम हुआ। मेरे शरीर की रूपरेखा ही बदल गयी। अब दिन भर चुस्त-दुरुस्त रहता हूँ।

इनकी शरण में जो जायेगा उसका शरीर स्वस्थ एवं निरोग रहेगा! मुझे पूरा विश्वास है कि योगासन कर प्राणी स्वस्थ रहकर डाक्टरों से मुक्ति पा सकता है। मैं गुरुदेव का आभारी हूँ।

सत्यप्रकाश शाह
शाह पोल्ट्री फार्म
नाटी इमली, वाराणसी

(तीन)

मैं वायु तथा अपच रोग से आक्रान्त था। मैंने अनेक आयुर्वेदिक एवं एलोपैथिक दवाओं का प्रयोग किया परन्तु कोई खास लाभ नहीं हुआ। मैंने बलिराज सिंह के बारे में काफी सुना तथा पढ़ा था। इनकी शरण में गया और इन्होंने कुछ आसन कराये जिससे मुझे बहुत लाभ हुआ।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि योग्य गुरुदेव की देख-रेख में आसन कर प्राणी स्वास्थ्य लाभ कर सकता है।

रामनिरंजन केजड़ीवाल
वाराणसी कोल्ड स्टोरेज
मलदहिया, वाराणसी

(चार)

मैं गठिया और वायु विकार से त्रस्त था और अनेक होमियोपैथिक एवं अंग्रेजी दवाओं का सेवन किया किन्तु कोई लाभ न होनेपर योगिराज श्री बलिराज सिंह की शरण में चला गया। इन्होंने अपने निर्देशन में जो योगाभ्यास कराया उससे शीघ्र ही लाभ हुआ।

मैं योगिराज का आभारी हूं जिन्होंने मुझे स्वस्थ कर दिया।

जीवनदास लखमानी
गणेश बिस्कुट कम्पनी
रामापुरा, बाराणसी

(पांच)

योगासनों के बारे में काफी कुछ सुना-पढ़ा किन्तु क्या ये आसन मेरे लिए संभव होंगे? यह शंका तब निर्मूल हुई जब योगिराज श्री बलिराज सिंह से मुलाकात हुई। मुश्किल लगने वाले आसन गुरुजी के द्वारा बतलाने व अभ्यास कराने पर आसान लगने लगे और तीन महीने के अभ्यास के बाद तो ऐसा लगने लगा जैसे मैं काफी दिनों से अभ्यस्त हूं। इतनी जल्दी ऐसा होना योगिराज जी के धैर्यवान व्यक्तित्व एवं बतलाने के ढंग के ही कारण हुआ, इसमें सन्देह नहीं है।

स्वस्थ एवं सुन्दर शारीरिक एवं मानसिक व्यक्तित्व योगासनों द्वारा ही संभव है। इसका मैं अपने जीवन में अनुभव करने लगा हूं।

वृजरतन दास
अध्यक्ष
भाषा विज्ञान एवं आधुनिक भाषा विभाग
संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

(छ:)

योगिराज प्रो० बलिराज सिंह मेरे योग्यतम शिष्यों में से एक हैं। योग के क्षेत्र में इनका वर्चस्व देखकर मुझे अतीव प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। इस लोकमंगलकारी कार्य प्रचार में ये पूर्ण मनोयोग से लगे हुए हैं, अतः बधाई के पात्र हैं।

इनका कार्य सवर्था प्रशंसनीय है। इनके द्वारा बताये गये आसनो से मुझे स्वतः बहुत लाभ हुआ है। मैं इनके मंगल भविष्य की कामना करता हूँ।

ओमप्रकाश द्विवेदी
प्रधानाचार्य
रा० उ० मा० विद्यालय
अल्मोड़ा

(सात)

इधर कई वर्षों से मैं गठिया व उदर रोग से पीड़ित रहा। लगातार विभिन्न इलाज करने पर भी कष्ट बना ही रहा।

योगिराज श्री बलिराज सिंह से इसी बीच भेंट हुई और उनके सान्निध्य में नियमित रूप से योगासन करने से मैं अब पूर्ण स्वस्थ हो चला हूं। योगासन शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अलौकिक एवं अद्भुत पद्धति है।

तोलाराम लखमानी
एडवोकेट
डी० ४७।१९५ रामापुरा
वाराणसी

(आठ)

यह भी एक ईश्वरीय विडम्बना ही है कि मैं स्वयं एलोपैथ का डाक्टर होकर भी जिसने अपने अध्ययन एवं प्रयोगों के बलपर अनेक कष्टसाध्य रोगों को दूर किया है, स्वयं पिछले कुछ वर्षों से गठिया एवं हृदय रोग का शिकार हो गया। अनेक डाक्टर मित्रों का सहयोग प्राप्त कर भी मैं स्वस्थ नहीं हो सका।

प्रसन्नता की बात है कि मेरा परिचय योगिराज श्री बलिराज सिंह से हुआ जिनके गुणों के बारे में पहले ही सुन रखा था। इनके कुशल निर्देशन में योगाभ्यास कर आज मैं पूर्ण स्वस्थ होकर समाज सेवा में तत्पर हूं और योगाभ्यास मेरे जीवन का प्रमुख अंग बन गया है।

मेरा यह विश्वास अब दृढ़ हो गया है कि भारत की इस प्राचीन

योग विद्या को घर घर एवं जन-जन तक पहुँचाकर मानव मात्र का कल्याण किया जा सकता है।

डॉ० निर्मलकुमार अग्रवाल
आलोक क्लीनिक
सुड़िया, वाराणसी

(नौ)

मैं मधुमेह एवं अम्लपित्त आदि रोगों से भयंकर आक्रान्त था। अनेक औषधियां एवं उपचार किया किन्तु लाभान्वित नहीं हुआ। मैंने श्री बलिराज सिंह की प्रशस्ति सुनी, मन आकृष्ट हुआ। गुरुदेव ने कृपा पूर्वक मुझे आसनों की शिक्षा देकर अपने सान्निध्य में अभ्यास कराया। मैं शीघ्र ही स्वस्थ हो गया और आसनों के अभ्यास से निरन्तर तेज एवं ओज की वृद्धि हो रही है।

मेरा अनुरोध है कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वस्थ और दीर्घायु कामना के लिए योग्य गुरु की देख रेख में योगासनों का अभ्यास करना चाहिए। मुझे यह आस्था पत्र लिखते समय हर्ष हो रहा है कि गुरुदेव इस युग में एक कुशल, सुयोग्य, योगासनों के मर्मज्ञ एवं ज्ञाता हैं।

अंजनीनन्दन मिश्र
मिश्र भवन
पशुपतेश्वर महादेव; वाराणसी

(दस)

मैं विगत कई वर्षों से स्नायविक दुर्बलता, रक्तचाप एवं वायु विकार से पीड़ित होता जा रहा था। कुछ महीने पूर्व जब यह कष्ट विशेष बढ़ गया था, इसी बीच गुरुदेव श्री बलिराज सिंह से योगाभ्यास के निर्देशन का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

गुरुजी ने एक माह तक अपने सामने सारे आसन करवाये। अब मैं स्वयं नियमित रूप से इन क्रियाओं को करता हूँ। मुझे निरन्तर लाभ हो रहा है। आदरणीय गुरु जी की इस लोक कल्याणकारी भावना का मैं बहुत आभारी हूँ।

मोहन दास
गुरुबाग, वाराणसी

(ग्यारह)

गुरुदेव श्री बलिराज सिंह का मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने चार सप्ताह तक अपने निर्देशन में योगाभ्यास की शिक्षा दी और उन्हीं की कृपा से मैं वायु विकार से मुक्त हो सका।

आप की सेवा भावना से मैं बहुत प्रसन्न हूँ कि आप बड़ी लगन से निर्देशन देने के लिए तैयार हो जाते हैं। आपकी लोक-कल्याणकारी भावना अतुलनीय है।

रविभूषण जैन
राजादरवाजा, वाराणसी

(बारह)

मेरी लड़की सोनू श्रीवास्तव की आंख में छोटी-बड़ी की गड़बड़ी थी। अंग्रेजी दवाओं से कोई लाभ नहीं हुआ।

चारों ओर से थक हार कर मैंने गुरुजी के आदेश का पालन किया और नियमित योगाभ्यास शुरू कराया और कुछ ही दिनों में दोनों आंखें स्वाभाविक रूप से एक समान हो गयीं।

यौगिक क्रियाओं के प्रति मेरी घोर आस्था है।

राधे मोहनलाल श्रीवास्तव
टेलीफोन निरीक्षक
वाराणसी कैण्ट

(तेरह)

मैं श्वांस रोग से पीड़ित था और काफी इलाज किया किन्तु आराम नहीं हुआ। इसी बीच योगिराज श्री बलिराज सिंह से भेंट हुई। इनके द्वारा बताये गये आसनों के अभ्यास से मुझे काफी राहत मिली। आसनों का लाभ मैं अभी भी ले रहा हूं।

श्रीगोपाल गोयल
३० ए, रवीन्द्रपुरी,
वाराणसी

विगत तीन वर्षों से मैं फील पांव रोग से बुरी तरह ग्रस्त था। चूंकि प्रेस में कंपोजिंग करने के लिए मुझे देर देर तक खड़ा रहना पड़ता था अतः यह रोग मेरे लिए निरन्तर दुःखद एवं चिन्ताजनक होता जा रहा था। इसी बीच गंगा की बाढ़ में भीग जाने के कारण मेरे पांव में घाव हो गया और मवाद आने लगा।

योगिराज श्री बलिराज सिंह ने एक दिन साहित्यकार प्रेस में जब मैं काम कर रहा था, मेरे कष्ट को देखा। मुझ पास बुलाकर आपने खान-पान में परहेज करने का निर्देश देते हुए मुझे कुछ आसन करने को कहा। मुझे ऐसी आशा नहीं थी किन्तु इसका प्रभाव मेरे ऊपर जादू की तरह हुआ।

अब मेरा पांव ठीक है, रोग लापता हो गया और मैं स्वस्थ हूँ। योगिराज के प्रति मैं आभारी हूँ, जिन्होंने स्वयं कृपा करके मेरी रक्षा की। इसके पहले मैं दवा-दारू में काफी धन और समय लगाकर निराश हो चुका था।

महेश प्रसाद
अस्सी, वाराणसी

मैं विगत साल भर से मधुमेह व पिण्डली के दर्द से परेशान था लेकिन श्री बलिराज सिंह के निर्देशन में योगाभ्यास करने से एकदम स्वस्थ हो गया हूँ।

संजय कुमार
कुमार स्टूडियो;
गुरुबाग, वाराणसी

(सोलह)

विगत १० वर्षों से मैं वायु विकार एवं पेट के रोग से पीड़ित था। इस बीच अनेक डाक्टरों एवं वैद्यों से इलाज कराया किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ और मर्ज घटने के बदले बढ़ता ही गया। सौभाग्य से योगिराज श्री बलिराज सिंह से मुलाकात हुई और उनके बताये आसनों से अब मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। योगासनों में मेरी अटूट आस्था है।

अरुणकुमार साह
ज्योति इन्टरप्राइजेज, जगमोहन मलिक लेन
कलकत्ता

(सत्रह)

कुशल योग निर्देशक श्री बलिराज सिंह के द्वारा बताये गये योगासनों का जादुई असर मैंने अपने ऊपर देखा है। करीब पांच साल से एक्जिमा से मैं काफी पीड़ित था और तमाम इलाज करके हार चुका था। गुरुदेव की कृपा से अब मैं बिल्कुल स्वस्थ हूँ।
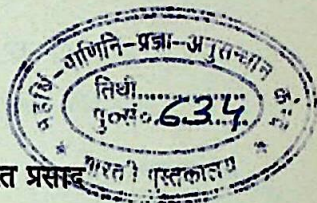
भरत प्रसाद
मलदहिया; वाराणसी

(अठारह)

मैं विगत १५ वर्षों से यकृत (लीवर) विकार से पीड़ित रहा और दवाओं से ठीक न होने के कारण निराश हो चुका था किन्तु योगिराज श्री बलिराज सिंह के निर्देशित आसनों से मैं अब पूर्ण रूप से स्वस्थ हूँ।

दयानारायण पाण्डेय
भूगोल प्रवक्ता
आदर्श सेवा विद्यालय इण्टर कालेज
वाराणसी

योगिराज श्री बलिराज सिंह के बताये आसनों को करने से मेरा दमा का रोग जो ५ वर्ष पुराना था, काफी ठीक हो गया है।

भगवती प्रसाद सिंह
खुलुआ, मीरजापुर

(बीस)

वायु विकार से शायद मुक्ति न पाता क्योंकि सभी प्रकार की दवायें कर मैं हार चुका था। बलिराज सिंह के निर्देशित आसनों से मैं पूर्ण स्वस्थ हो चला हूँ। इन्हीं आसनों से मैंने और कई लोगों को ठीक किया है।

अखिलेश्वर प्रसाद सिंह
खुलुआ, मीरजापुर

(इक्कीस)

मेरे पड़ोसी श्री जीतेन्द्र बहादुर सिंह वायु विकार से तथा मैं

खूनी ववासीर से पीड़ित था किन्तु योगिराज श्री वलिराज के वताये आसनों से हम दोनों ठीक हो गये हैं।

राजदेव सिंह

खुलुआ, मीरजापुर

(वाइस)
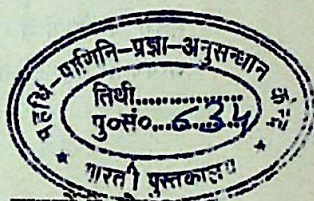
योगिराज श्री वलिराज सिंह काशी के महान साधकों में से एक हैं। योग आसनों द्वारा कठिन से कठिन रोगों की चिकित्सा आपने की है और रोग ग्रस्त व्यक्तियों को रोग मुक्त किया है। मेरी यह धारणा है आसनों के द्वारा किसी रोग से संबन्धित किसी रोगी को, आपके निर्देशानुसार लाभ तो होता ही है; किन्तु आरोग्य प्रदान करने में आपके आशीर्वाद का कम हाथ नहीं रहता।

मुझे इस वात का अनुभव स्वयं अपने ऊपर ही हुआ है।

सत्यव्रत शर्मा

आ० भा० एवं भाषा विज्ञान विभाग

सं० सं० वि० वि० वाराणसी

(तेईस)

मैं भयंकर वात _रोग से पीड़ित था तथा मेरे पेट में एक कठोर सा नाभी के ऊपर बन गया था। मैं वेल्लोर अस्पताल में १३ दिन रहा तथा जितनी ज्यादा से ज्यादा जांच हो सकती थी सब हुई लेकिन वह लोग कोई निदान नहीं कर पाये। भारतवर्ष के प्राय: सभी माने हुये डाक्टरों को भी मैंने दिखलाया लेकिन कोई भी निदान नहीं कर पाया।

इसी बीच मुझे सौभाग्यवश योगिराज मिले और इनके सरल तथा सप्रेम निर्देशन में मैंने आसम करना शुरू किया जिससे ६ मास के अन्दर ही वह कठिन रोग दूर हो गया और अब मैं पूर्ण स्वस्थ हूं।

शुभेच्छु
भैरो प्रसाद अग्रवाल
गोलघर, वाराणसी

(चौवीस)

मैं मधुमेह रोग से पीड़ित था अनेक औषधियों का प्रयोग किया किन्तु दब भले ही जाता था पूर्ण रूप से आराम नहीं होता था। किन्तु गुरुदेव श्री बलिराज सिंह के सान्निद्ध में यौगिक आसनों का अभ्यास कर अब मैं पूर्ण रूप से स्वस्थ हूँ। शरीर में तेज ओज की निरंतर वृद्धि हो रही है।

अजीत सिंह सबरवाल
चौकाघाट, वाराणसी

(पच्चीस)

यह लिखते हुए मुझे प्रन्नता होती है कि इनके द्वारा प्रेरित आसनों से मैं लाभान्वित हुआ। कुछ ही दिनों के अभ्यास के वाद मैं वायु विकार से मुक्त हो गया। ऋषियों की वाणी सत्य ही है कि ठीक-ठीक आसन करने से शरीर निरोग रखा जा सकता है।

शीतलाप्रसाद त्रिपाठी
प्राचार्य
अ० आ० म० वि०; कमच्छा
वाराणवी

(छब्बीस)

मैं स्वयं स्याटिका व पेट के मर्ज से पीड़ित रहता था जिसकी वजह से मैं उठने वैठने में असमर्थ था और बहुत दिनों तक अंग्रेजी दवाओं का सेवन कर चुका था परन्तु कोई लाभ नहीं था मैंने डा० श्री निर्मलकुमार अग्रवाल से श्री वलिराज सिंह जी की तारीफ सुनी और उन्होंने ही सम्पर्क कराया। वलिराज सिंह जी के बताये हुए योगासनों से मैं पूर्णतया स्वस्थ हूं।

भुवन भूषण शाह
शिवपुर, वाराणसी

(सत्ताईस)

श्री बलिराज सिंह जी भारतीय यौगिक क्रियाओं के अच्छे जानकार हैं। और अच्छी दिलचस्पी लेते हैं और बहुत लोगों को लाभ पहुंचाते हैं मैं स्वयं इनके बताये गये क्रियाओं द्वारा लाभान्वित हुआ हूँ और मैं उनका बहुत आभारी हूँ और कामना करता हूँ कि वे सभी पीड़ित व्यक्तियों को लाभ पहुंचाते रहेंगे।

रामअधार सिंह
भू० पू० सेनानी
गतगंज, वाराणशी
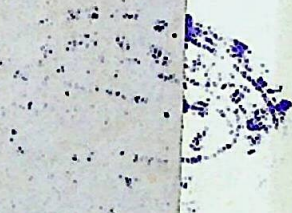
लेखक की अन्य

- योग चिकित्सा
  (योगासनों द्वारा रोग निवारण)

- वाह्य एवं आन्तरिक योग
  (शीघ्र प्रकाश्य)

साहित्यकार प्रेस, भदैनी, वाराणसी